प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अखिल भारत सर्व सेवा संघ,
वर्धा (बम्बई-राज्य)

मुद्रक :
बलदेव दास,
संसार प्रेस,
काशीपुरा, बनारस

पहली बार : १०,०००
जनवरी, १९५७
मूल्य : आठ आना

अन्य प्राप्ति-स्थान
अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी
गांधी भवन
वर्धा
हैदराबाद

लोकनीति की नांदी

हिन्दुस्तान के दो टुकडे तो हो गये, फिर भी राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए जिन साधनों का स्वीकार अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने किया था, उन्ही साधनों से हिन्दुस्तान को राजनीतिक स्वतन्त्रता मिल गयी है। इसलिए कांग्रेस का उसके वर्तमान रूप मे काम पूरा हो गया है। याने प्रचार के एक साधन के रूप में और पार्लमेंटरी राजनीति के एक औजार के रूप मे अब उसकी उपयोगिता नहीं रह गयी है। अब हिन्दुस्तान को शहरो और कसबों से अपना ध्यान हटाकर सात लाख गांवों के लिए सामाजिक, नैतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है। हिन्दुस्तान जैसे-जैसे अपने इस लोक-राज्य के लक्ष्य की तरफ प्रगति करेगा, वैसे-वैसे नागरिक-शक्ति सैनिक-शक्ति से अधिक प्रबल और प्रभावशाली बनेगी। राजनीतिक पार्टियों और सम्प्रदायवादी संस्थाओं में सत्ता के लिए जो अवांछनीय स्पर्धा चलेगी, उसमे लोकजीवन स्वस्थ नही बनेगा। इसलिए इस होड से कांग्रेस को बचकर रहना चाहिए।

नयी दिल्ली

२६-१-१६४८

—मो० क० गांधी

(मुक्त अनुवाद)

प्रकाशकीय

स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् भारतवर्ष का राजनैतिक नक्शा क्या हो, इसकी तरफ सबका ध्यान गया। राष्ट्रपिता गाधीजी अन्य देशों के स्वाधीनता-सग्राम के सेनापतियों के समान सत्ता की बागडोर अपने हाथों में न रख, सत्ता से अलग रहे। उन्होंने सत्ता से अलग रहकर राष्ट्र-उत्थान और निर्माण का कार्य करने का निश्चय किया। दूसरी तरफ सत्तारूढ भाई "विधान-निर्मात्री परिषद्" का निर्माण कर सविधान बनाने में लगे। सविधान के निर्माण के समय कई तरह के विचार सामने आये। चुनाव, राज्य-व्यवस्था का स्वरूप क्या हो, इस सम्बन्ध में भी चर्चाएँ चलीं। लेकिन बावजूद सारी चर्चाओं और सुझावों के हमारा सविधान सुप्रसिद्ध पाश्चात्य प्रजातान्त्रिक देशों जैसे इग्लैंड आदि के ही सविधान के नमूने पर बना। आजादी के साथ साथ अनेकानेक कठिनाइयों और विपत्तियों के बादलों के मँडराने तथा अन्य कारणों से चुनाव तथा राज्य व्यवस्था के सम्बन्ध में गहराई से विचार उस समय नहीं किया जा सका।

आजादी के थोड़े ही दिनो बाद राष्ट्रपिता नहीं रहे। उनका लोकशाही का अभिनव प्रयोग आगे नहीं बढ सका। राज्य-व्यवस्था सविधानानुसार चलती रही। प्रथम चुनाव में राष्ट्रीयता का विशेष असर था। अत चुनाव पद्धति के दुष्परिणाम का भान मुल्क को नहीं हुआ। लेकिन दूसरे आम-चुनाव के समय समस्त मुल्क पर आम-चुनाव और मौजूदा राज्य-पद्धति का अभिशाप प्रकट हुआ। जातीयता, साम्प्रदायिकता, कलह, राष्ट्रीयता, स्वार्थ और प्रांतीयता आदि के भाव बढने लगे। इन चीजों को दफनाने के लिए राष्ट्रपिता ने सारा सघर्ष किया था और अन्त में अपने जीवन की आहुति दे दी। वे सारी चीजें न केवल उभड़ने लगीं, बल्कि मुल्क पर जबरदस्त रूप से छाने लगीं। सारा मुल्क इस अधकार से चिंतित हो उठा।

बापू के प्रयोग और कार्य को आगे बढाने के ध्येय से निकल पड़नेवाले आचार्य विनोबाजी ने भूदान-आन्दोलन के साथ बापू के लोकनीति के विचारों को भी जनता के सामने रखना प्रारभ किया। १९५२ में हुए आम-चुनाव के दुष्परिणामों को देखकर न केवल विनोबाजी को ही, बल्कि समूचे राष्ट्र को भी बहुत दुख हुआ।

विनोबाजी ने चुनाव के दुष्परिणामों को सार्वजनिक रूप से रखकर जनमानस को

शिक्षित करना प्रारंभ किया। धीरे-धीरे जनता को एक नया समाधानकारक विचार आज के चुनावमूलक प्रजातान्त्रिक राज्य-व्यवस्था के विचार के स्थान पर मिलने लगा।

१९५४ में गया के अखिल भारत सर्वोदय-सम्मेलन के व्यासपीठ पर मुल्क के राजनेता और प्रधान मंत्री पं० जवाहरलालजी नेहरू के सामने संक्षेप में विनोबाजी ने चुनाव की कमियों को रखा और संशोधन, परिवर्द्धन की माँग की। तभी से बराबर आज तक भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के नेता और विचारक विनोबाजी के साथ-साथ राजनीति की जगह लोकनीति के विचार से जनता को अवगत कराते आ रहे हैं। इसका असर राजनेताओं और राजनीतिक पक्षों पर धीरे-धीरे, पर निश्चित रूप से पड़ रहा है।

आज सर्वोदय-विचार में विश्वास रखनेवाले सब इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि राजनीति और सत्ता के रास्ते से नहीं, बल्कि सेवा और लोकनीति के रास्ते से मुल्क का और संसार का भला हो सकता है। अतः चुनाव में भाग न लेकर लोकनीति के विचार को आगे बढ़ाने का सबका निश्चय है। इसीलिए सर्व-सेवा-संघ ने धर्मपुरी में एक ऐतिहासिक प्रस्ताव किया है। इस प्रस्ताव का भाष्य सर्वोदय के चिंतकों और मनीषियों ने किया है, जिसकी सम्यक् जानकारी के लिए यह पुस्तिका प्रकाशित की जा रही है।

पुस्तिका तीन भागों में विषय की सुविधा की दृष्टि से विभाजित की गयी है। पहले भाग में लोकशाही के विचारों का विश्लेषण, कमियों का दिग्दर्शन, विरोधी पक्ष का विश्लेषण, कमियों का उल्लेख करते हुए मुल्क का हित लोकनीति के विचार में किस प्रकार सधता और सुरक्षित रहता है, यह दिखाया गया है। इस भाग के लेखों को इस क्रम से रखा गया है कि पाठकों को लोकनीति के विचार के विकास का भी पता चले।

दूसरे भाग में सर्व-सेवा-संघ द्वारा धर्मपुरी में स्वीकृत मूल प्रस्ताव, उस पर विनोबाजी, दादा, धीरेन्द्रभाई, जयप्रकाश नारायण, शंकररावजी देव आदि के भाष्य और विश्लेषण हैं।

तीसरे भाग में चुनाव-प्रस्ताव पर उठनेवाले प्रश्नोत्तर हैं।

आशा है, पूरी पुस्तक को पढ़ने से पाठकों को लोकनीति सम्बन्धी संक्षिप्त जानकारी मिलेगी।

एक भाई पूछ रहे थे, "हम किसको वोट दें ?" ऐसा सवाल कोई पूछता है, तो मन में आता है, क्या हम दूसरों को वोट देने के लिए जन्मे हैं ? इसका अर्थ यही हुआ कि "अरे भेड़ो ! तुम्हें कौन-सा गड़ेरिया चाहिए ? जो गड़ेरिया तुम्हें प्रिय होगा, वही रखा जायगा !" हम कहते हैं, "हम भेड़ नहीं हैं। हमें कोई गड़ेरिया नहीं चाहिए।" एक कहता है, 'यह गड़ेरिया अच्छा है, इसे चुनो।' दूसरा गड़ेरिया कहता है, 'हमें चुनो।' हम कहते हैं कि 'आप अच्छे गड़ेरिये हैं या बुरे, हम नहीं जानते। लेकिन न हम भेड़ हैं, न हमें आपकी जरूरत है।'

फिर वे कहते हैं, 'हम आपका इंतजाम करेंगे !' अरे भाई, पहले अपना इंतजाम कर लो, तो बहुत पाया। घोड़े पर सवार होते हैं, पर उसकी सेवा नहीं करते, तो घोड़ा कहता है, 'आप कृपा करके नीचे उतर आइये !' आप कहेंगे, 'फिर हम खरहरा नहीं करेंगे, अस्तबल साफ नहीं करेंगे, घास नहीं खिलायेंगे', तो वह कहता है, 'ठीक है, मैं देख लूँगा !' तो यह ताकत लोगों में तब आयेगी, जब ग्राम-राज्य का संकल्प गाँव-गाँव करेगा।

—विनोबा

कोविलपालयम् (कोइंबतूर)
२२-६-'५८

अनुक्रम

प्रथम भाग

दूसरा भाग

तीसरा भाग

[प्रथम भाग]

: १ :

मौजूदा चुनाव-पद्धति के दुष्परिणाम

(विनोबा)

[बोधगया-सर्वोदय-सम्मेलन में प्रधान मंत्री पं० जवाहरलालजी नेहरू पधारे थे। इस अवसर पर विनोबाजी ने चुनाव से उत्पन्न दुष्परिणामों की तरफ पंडितजी के साथ सारी जनता का ध्यान सार्वजनिक सभा में आकृष्ट किया। दो वर्ष पहले १९५४ में विनोबाजी ने गया की सार्वजनिक सभा में चुनाव के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किया और जो संशोधन-परिवर्द्धन चाहते थे, उससे आज उनका विचार काफी आगे चला गया है। फिर भी चुनाव-संबन्धी आज के विचारों में संशोधन करने के विचार का सूत्रपात खुले आम वहीं से होता है। अतः ऐतिहासिक महत्त्व के कारण उस भाषण का वह अंश नीचे दिया जा रहा है।]

प्रथम तो सोचने की बात यह है कि राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक, जिस जाति-भेद पर अनन्त प्रहार होते रहे, उसी जाति-भेद की प्रतिष्ठा, जिसकी कमर टूट चुकी थी, चुनावों का जो तरीका हमारे देश में आया है, उसके कारण मजबूत-सी होती जा रही है। यह मैंने बिहार में देखा, दूसरे भी प्रान्तों में देखा। चुनाव का तरीका लाभदायी समझकर हमने उसे स्वीकार किया है। पर अपने देश की हालत देखते हुए क्या उनमें कोई जरूरी संशोधन करना चाहिए, यह सोचने का अवसर अब आया है। क्या संशोधन हो सकता है, यह चिन्तन-शील लोग सोचें। पर यह नहीं हो सकता कि सारे राष्ट्र की मुख्य चिन्तन-शक्ति

भिन्न-भिन्न प्रकार के चुनावों की परम्परा मे ही लगी रहे। देहात से लेकर राजधानी तक के तरह-तरह के चुनाव, अंदर-अंदर के और बाहर के, भिन्न-भिन्न पक्षों के, सतत होते रहते हैं और एक-एक चुनाव मे समाज की शक्ति, उसका पैसा, उसका समय, खर्च होता है। उसके अलावा, जो मनमुटाव बढता है, वह अलग। इस पर कुछ सोचने की जरूरत है या नहीं, यह जिम्मेदार नेताओं के लिए एक विषय है। मैं नम्रता से यह विषय पेश कर रहा हूँ।

इस पर कुछ न-कुछ चिंतन हमारा चलता ही है। परन्तु यह किसी एक मनुष्य के चिन्तन का विषय नहीं हो सकता। बहुतों को इसका चिंतन करने की जरूरत है। क्या यह हो सकता है कि पक्षीय चुनावो को अभी सीमित किया जाय? क्या कुछ क्षेत्र ऐसे छोडे जायँ कि जिनमे पक्षीय पद्धति से चुनाव न हो? क्या यह हो सकता है? या और भी कोई तरीके ढूँढे जा सकते हैं, यह एक सोचने का विषय है। नहीं तो जिस तरह जाति-भेद एक खतरनाक चीज हमने मानी है, उसी तरह उत्तरोत्तर अनुभव आयेगा कि इस गरीब देश के लिए, जिसका स्तर सब तरह से गिर चुका है, राजनैतिक पक्षों के बीच जो साठ-गाँठ चलेगी, उससे कहाँ तक लाभ होगा? यह एक सोचने का विषय सहज उठता है। मेरे मन मे आता है कि कम से-कम, जो सज्जन होते हैं, उनकी आइडियालाजीज मे, उनकी कल्पनाओं मे, विचार-सरणी मे कितना भी भेद क्यो न हो, उनके बीच कोई एक सर्वसाधारण कार्यक्रम पर एकता होनी ही चाहिए।

सबके लिए सयुक्त कार्यक्रम की जरूरत

अगर किसी ऐसे सार्वजनिक उपयोग के, सेवा के काम के लिए एकता नहीं बन सकती है, तो मै यह कहूँगा कि वे सज्जनों के पक्ष नहीं होगे। सज्जनों मे विचार-भेद के बावजूद आचार के विषय मे कुछ न-कुछ एकसूत्रता, कुछ-न-कुछ समान अंश होना ही चाहिए। ऐसा समान अंश ढूँढकर उसका प्रोग्राम बनाना चाहिए और उस कार्यक्रम पर देश की शक्ति केन्द्रित करनी चाहिए। सब लोगों की शक्ति उसमे लगनी चाहिए और एक आवाज मे लोगों के सामने यह चीज रखी जानी चाहिए। तभी इस देश की जनता मे, जो बहुत ही निष्क्रिय

हो चुकी है, कोई प्राण-सञ्चार होगा—क्रिया की प्रेरणा उसको होगी। उसकी जड़ता कुछ कम होगी। यह आवश्यकता बहुत महसूस होती है। मैंने तो नम्रता के साथ कई दफा कहा है कि 'भूदान-यज्ञ' इस तरह का एक कार्यक्रम हो सकता है। उसके साथ दूसरे और भी कार्यक्रम जोड़े जा सकते हैं। उस पर सोचा जा सकता है। लेकिन ऐसा कोई कार्यक्रम होना चाहिए कि जिस पर भिन्न-भिन्न पक्षों के सज्जनों की एकता हो जाय और उस पर जोरों से अमल शुरू हो जाय।

विचार-मंथन हो, आचार-संघर्ष नहीं

इसका मतलब यह नहीं कि भिन्न-भिन्न विचारों को हम छोड़ ही दें। विचार-भिन्नता का उपयोग भी है। विचार-मथन जरूर होना चाहिए, मैंने यह कई दफा कहा है। आचार-सघर्ष नहीं होना चाहिए। मथन से नवनीत निकलता है, मक्खन निकलता है, इस वास्ते विचार-मथन बहुत जरूरी चीज है। सघर्ष से अग्नि पैदा होती है, जो कि दाहक वस्तु है, इसलिए सघर्ष आचार में नहीं आना चाहिए। विचार का मथन जरूर होता है। तो भाइयो! यह एक चिंतन का विषय हमारे सामने है।

बोधगया
१८-२-'५४

: २ :

चुनाव की आम खराबियाँ

(जवाहरलाल नेहरू)

[बोधगया-सर्वोदय-सम्मेलन में प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के सामने विनोबाजी ने चुनाव की खामियों को प्रस्तुत किया और उस सम्बन्ध में चिंतन-मनन के लिए आह्वान किया। नेहरूजी ने अपने भाषण में चुनाव के सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त किया और खामियों के प्रति अपनी सहमति प्रकट की। नीचे नेहरूजी के भाषण का वह अंश दिया जा रहा है।]

अब यह तो एक ऐसा पेचीदा प्रश्न है कि जिस किसीको जरा भी अनुभव है इन चुनावों का, विनोबाजी ने भी देखा, जैसा कि वे तेज देखनेवाले हैं, हम लोग उसमें फँसे और इसमें कोई संदेह नहीं, जो बात विनोबाजी ने कही, वह सही है। यह खराबी है और बड़ी खतरनाक खराबी है। एक माने में तो यह दुनिया की खराबी है। यानी दुनिया में भी यह बात हर देश में होती है। लेकिन हमारे देश में वह बहुत ज्यादा हो जाती है—जाति-भेद और दूसरे भेद जो हैं, उनकी वजह से। बहुत जल्दी हम प्रान्तीयता में, जाति-भेद में या धर्म-भेद में पड़ जाते हैं। और जो चीजें हमारी शक्ति बढ़ाने को थीं, एकता सिखाने को, वही एकता उन बुराइयों में हो जाती है। अजीब हाल है। तब इसका मैं क्या जवाब दूँ ?

चुनाव के इस प्रश्न को विनोबाजी ने उठाया। बहुत बड़ा प्रश्न है। और इसमें कोई संदेह नहीं कि अक्सर ऐसे लोग, जिनमें सुबुद्धि हो, जो कि हर तरह से अच्छे हों, वे पसन्द नहीं करते कि इस चुनाव के पास जायँ, क्योंकि वे उसमें जाते हुए हिचकते हैं। समझते हैं, गंदगी में क्यों पड़ें, झगड़े में क्यों पड़ें, तू-तू,

मैं-मैं मे क्यों पड़ें, इसलिए ये अलग रहना पसन्द करते हैं। जब हमारे अच्छे लोग चुनाव से अलग रहना पसन्द करते है, तो उस चीज में ऐसी कोई खराबी जरूर है, जिससे वे इसमे नहीं आते है।

बोधगया
१८-४-'५४

: ३ :

लोक-क्रान्ति की लक्ष्मण-रेखा

(दादा धर्माधिकारी)

एक छोटा-सा गाँव है, चाहे छोटा-सा ही क्यों न हो, अपने मे एक छोटी-सी दुनिया है। दुनिया बनाने के लिए सभी तरह के लोगों की जरूरत होती है। सभी एक तरह के हों, तो दुनिया फीकी और बेरंगी हो जायगी। इस गाँव मे सभी तरह के आदमी है। लेकिन दो व्यक्ति प्रमुख है। गाँव मे हरएक की जबान पर उनका नाम खेलता है। एक की उपाधि है कुलाभिमानी और दूसरे की उपाधि है ग्राम-सेवक। कुलाभिमानी बड़ी दक्षता और जागरूकता से अपने घर का काम-काज करता है और घास का एक तिनका भी या गोबर का एक उपला भी किसीको छूने नहीं देता। बड़ा कुशल और दक्ष गृहपति है। अपने परिवार की शान-शौकत, धाक और साख सँभालने मे सारे गाँव मे वही सबसे अधिक व्यवहार-चतुर माना जाता है। गाँव पर उसकी कर्तृत्व शक्ति की छाप है।

कुलघ्न के लिए आदर, स्नेह और आस्था

ग्राम-सेवक भी चातुर्य, दक्षता और सावधानता मे किसी कदर कम नहीं है। लेकिन उसका ध्यान घर की अपेक्षा गाँव के काम-काज मे हमेशा लगा रहता है। घर से उसे प्रेम है, लेकिन अपने कुल की अपेक्षा गाँव की प्रतिष्ठा का खयाल अधिक है। वह गाँव की शान को अपनी शान मानता है और गाँववालों की वक्त को अपने परिवार की वक्त मानता है। परिवारवाले उसे बेकार समझते

है। इसे तो 'गाँव का अदेशा है, यह हमारा कोई नहीं लगता। रात-दिन गाँव की धुन इस पर सवार रहती है। परिवार की सम्पत्ति और परिवार की सत्ता बढ़ाने की इसको तनिक भी चिन्ता नहीं है। कुलाभिमानी तो कुलावतंस है, लेकिन यह तो कुलघ्न है।' परन्तु सारे गाँव में कुलाभिमानी के कुल की अपेक्षा ग्राम-सेवक के परिवार के लिए कहीं अधिक आदर, स्नेह और आस्था है।

कुटुम्ब का उद्धार वह करता है, जो कौटुम्बिक स्वार्थों से ऊपर उठकर सार्वजनिक हित की चिन्ता करता है, जिसकी कुटुम्ब-नीति ग्राम-नीति में विकसित हो जाती है।

पक्ष-नीति और लोक-नीति

पक्ष-नीति और लोक-नीति में यही अन्तर है। आज की लोक सत्ता पक्ष-सत्ता में परिणत हो गयी है और लोकनीति का रूपान्तर पक्षवाद में हो गया है। लोगों को सुखी, सतुष्ट और समृद्ध बनाने की प्रतिज्ञा सबकी है और शायद वास्तविक इच्छा भी है। लेकिन हरएक पक्ष की यह धारणा है कि सबके सुख का संयोजन मेरे पक्ष की सत्ता, सामर्थ्य और प्रतिष्ठा म ही निहित है। मेरी पार्टी की इज्जत अवाम की इज्जत है, मेरी पार्टी की हुकूमत खल्क की हुकूमत है और पार्टी का रुतबा सारी जनता का रुतबा है।

भूदान एक प्रामाणिक प्रयास

इस धारणा मे पक्षवाद और प्रभुत्ववाद के बीज छिपे हुए हैं। पक्षनीति आज लोकनीति को क्षीण कर रही है। 'भूदान-यज्ञ आन्दोलन' पक्षनीति को लोकनीति म परिणत कर देने का एक प्रामाणिक प्रयास है।

राज्यनीति का लोकनीति पर आधिपत्य

पक्षनीति की बदौलत राज्यनीति का आधिपत्य लोकनीति पर किस प्रकार स्थापित हो जाता है, यह देखने और समझने की बात है। उम्मीदवार चुनाव म खड़ा होता है, उसको एक ही फिक्र है कि चाहे जिस तरकीब या हिकमत से मैं चुनाव म जीत जाऊँ। वह कोई उपाय उठा नहीं रखता। उसे किसी भी युक्ति-प्रयुक्ति से परहेज नहीं होता। लोक-जीवन की शुद्धता की अपेक्षा, चुनाव की

सफलता का मूल्य वह अधिक मानता है। जितनी पार्टियाँ होती हैं, वे सभी चुनाव की सफलता को अपना तात्कालिक लक्ष्य मानती हैं। सार्वजनिक चारित्र्य की तरफ किसीका ध्यान नहीं होता। यह स्वाभाविक ही है। हरएक पार्टी की यह निष्ठा है कि जब तक हमारे हाथ में हुकूमत नहीं होगी, तब तक सार्वजनिक कल्याण का संयोजन होना असंभव है। इस प्रकार लोक-सत्ता की जगह पक्षनिष्ठ प्रभुत्ववाद ले लेता है और लोक-सत्ता के सिंहासन पर पक्षवाद अपना कब्जा जमा लेता है।

सारा गुड़ मिट्टी हो जायगा

प्रत्यक्ष संसदों और राज्य-परिषदों में क्या होता है? जब कोई सार्वजनिक हित का प्रश्न, प्रस्ताव या विधेयक उपस्थित होता है, तो हर पार्टी के सदस्य की उस तजवीज या सवाल की तरफ देखने की नजर ऊपर-ऊपर से तो अलग-अलग मालूम होती है, लेकिन तह में एक-सी ही होती है। अपना वोट देते वक्त उसे सार्वजनिक हित का खयाल नहीं होता। फिक्र इतनी ही होती है कि इस मत-गणना का, राय-शुमारी का मेरी पार्टी के लिए क्या नतीजा होगा? पार्टी हार जायगी तो फिर से चुनाव के झंझट में पड़ना होगा, फिर से पैसा खर्च करना होगा, गाँव-गाँव और गली-गली की खाक छाननी पड़ेगी और अगर पार्टी का राज्य खतम हो गया, तो सारा गुड़ मिट्टी हो जायगा।

प्रभुत्ववाद का नाम लोक-सत्ता नहीं

वर्गवाद के संदर्भ में जनतन्त्र वर्ग-सत्ता का उपकरण बन जाता है, उसी प्रकार पक्षवाद के संदर्भ में वह पक्ष-सत्ता का औजार बन जाता है। हम लोक-सत्ताशाही को अगर वर्ग-सत्ता की टहलनी नहीं बनने देना चाहते, तो उसे पक्ष-सत्ता की चेरी भी नहीं बनने देना चाहते हैं। आवश्यकता लोगों को सुखी, सम्पन्न और सन्तुष्ट बनाने की ही नहीं है, वह तो अनियन्त्रित व्यक्ति-सत्ता से भी हो सकता है, जिसे हम तानाशाही कहते हैं, लेकिन जहाँ एक-से अधिक पक्ष होते हैं, वहाँ वे तानाशाही के कायल नहीं होते। वे तो बराबर लोकशाही की दुहाई देते रहते हैं। लोकशाही के लिए आवश्यकता इस बात की है कि सामान्य नागरिकों में स्वयं-प्रेरणा, स्वयं-कर्तृत्व और स्वयं-

शासन की सामर्थ्य और प्रवृत्ति बढ़े। जनता को सुखी और सन्तुष्ट बनाने का ठेका अगर कोई पार्टी या गिरोह ले लेता है, तो जनता में जिम्मेवारी की भावना और स्वय-शासन की प्रेरणा जाग्रत नहीं हो सकती। नागरिकों के प्रभुत्ववाद का नाम लोकसत्ता नहीं है। मेरा आप पर प्रभुत्व और आपका मुझ पर प्रभुत्व यह 'मैं-मै—तू-तू शाही' है, यह लोकशाही नहीं है। जनता के स्वय-शासन का मतलब यह है कि किसीका प्रभुत्व किसी पर नहीं चलेगा, सबकी सम्मिलित सत्ता का नियन्त्रण हरएक पर रहेगा। इस लोकनीति के विकास के लिए पक्षवाद और पक्षनिष्ठा न तो उपयोगी है, न उपयुक्त ही है। पक्षों का अस्तित्व ससदीय लोकतन्त्र में काल-विपर्यय का, अर्थात् किसी सस्था विशेष की उपयोगिता खतम हो जाने के बाद भी उसके बने रहने का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

लोकनैतिक आन्दोलन की मूल प्रतिष्ठा

भूदान के कार्यकर्ताओं के लिए यह विचार आज बुद्धिपूर्वक प्रस्तुत किया जा रहा है। सारे देश में अब देशव्यापी चुनाव शीघ्र ही होनेवाले हैं। कहीं-कहीं उनके सुहावने ढोल बजने भी लगे है। चुनाव-बहादुरों के हृदय में वीरश्री का सचार होने लगा है। ऐसी स्थिति मे लोकक्रान्ति के द्वारा जो व्यक्ति लोक-नीति का विकास करना चाहते है, उन्हें अपना तौल सॅभालना होगा। भूदान-यज्ञ-आन्दोलन में हमने एक पथ्य रखने की कोशिश की है। भूदान और सम्पत्ति-दान भूमिवानों से और सम्पत्तिवानों से ही नहीं लिया, बल्कि उन लोगों से भी लिया है, जिनके पास भूमि और सम्पत्ति की मात्रा इतनी थोड़ी है कि उन्हें कोई भूमिवानों और सम्पत्तिवानों मे शुमार भी नहीं करता। जिनके पास न भूमि है, न सम्पत्ति है, सिर्फ मेहनत ही जिनका सहारा है, उनकी उस मेहनत का भी दान हमने मॉगा है। इस तरह आन्दोलन को सम्पत्ति-निरपेक्ष रखने की सावधानी हमने निरन्तर सॅभाली है। जिस प्रकार हमारा भूमिवान और सम्पत्तिवान व्यक्तियों मे कोई विरोध या अदावत नहीं है, उसी तरह से सत्ताधारी पक्षों और व्यक्तियों मे भी कोई विरोध या अदावत नहीं है। परन्तु हम लोक-क्रान्ति मे विश्वास रखते हैं, इसलिए जनता को सत्तावलम्बी बनाना नहीं चाहते। राज्याश्रयी जनता

लोकसत्ता के लिए आवश्यक लोकनीति और लोकचारित्र्य का विकास नहीं कर सकती। यह लोकनैतिक आन्दोलन की मूल प्रतिष्ठा है। उसका अधिष्ठान राज्यसत्ता नहीं; लोकसत्ता होगा।

पक्षवाद और सत्तावाद की नहर

अतएव लोकक्रान्तिनिष्ठ सभी कार्यकर्ताओं से हमारा साग्रह निवेदन है कि वे भूदान-कार्य को तरक्की देने के मोह से भी चुनावों मे किसी प्रकार का सक्रिय भाग न लें। लोकक्रान्ति की गगोत्री के प्रवाह को पक्षवाद और सत्तावाद की नहर में हरगिज न मोड़ें। आज उनके लिए अपनी मर्यादा का पालन करना मुश्किल हो रहा है। चुनाव का बवडर जैसे-जैसे तेज होने लगेगा, अपने कदम धरती पर जमाये रखना उनके लिए और भी मुश्किल होता जायगा। जिन लोगों ने भूदान के कार्य मे तन, मन या धन से मदद पहुँचायी है, उनके लिए लिहाज और मुरौवत होना स्वाभाविक है। लेकिन कृतज्ञता के लिए कोई अपने सत्त्व की बलि नहीं देता। कृतज्ञता के लिए कोई व्यक्ति अपने ईमान की कीमत नहीं देगा, कोई स्त्री अपने सतीत्व का सौदा नहीं करेगी और कोई राष्ट्र अपनी आजादी की कुर्बानी नहीं करेगा। उसी तरह लोकनीति को ही जिसने लोकक्राति का आधार माना है, वह राज्यनीति की वेदी पर लोकनीति का बलिदान नहीं करेगा।

इस सार्वजनिक व्यासपीठ की मर्यादा

भूदान-आन्दोलन एक सर्वजनव्यापी आन्दोलन है। पक्षनिष्ठ राज्यनीति मे विश्वास रखनेवालों के लिए भी उसमे उतना ही स्थान है, जितना तटस्थ नागरिकों के लिए है। उसमें सबका आवाहन है। मन्त्रि-मडल और विधान-सभाओं के सदस्यों से लेकर पक्ष-संस्थाओं के सदस्यों तक सभीका उसमे सविनय और साग्रह निमन्त्रण तथा स्वागत है। अपनी-अपनी पक्षगत राजनीतिक प्रवृत्तियों को सॅभालते हुए और अपने-अपने पक्ष की प्रतिष्ठा का ध्यान रखते हुए इस सार्वजनिक व्यासपीठ पर विनोबा उनका आवाहन करते है। वे भले ही चुनावों के संयोजन और संचालन में अपनी-अपनी रुचि और निष्ठा के अनुसार भाग लें। उनसे इतनी ही अपेक्षा है कि भूमिदान-यज्ञ-आन्दोलन के मच का उपयोग पक्ष-

निष्ठ राज्यनीति के लिए वे कृपया न करें। भिन्न-भिन्न पक्षों के व्यक्ति इस व्यास-पीठ पर से पक्षातीत लोकनीति का ही प्रतिपादन करें। परन्तु जिन लोगों ने भूदान-आन्दोलन को ही अपनी एकमेव प्रवृत्ति या प्रधान प्रवृत्ति माना है, अपना सारा समय उसीके लिए अर्पण किया है या जीविका के लिए जो समय देना पड़ता है, उसके अतिरिक्त सारे समय का दान भूदान-आन्दोलन को ही दिया है, उनके लिए तो यही मर्यादा हो सकती है कि वे इस आन्दोलन को सत्ता-निरपेक्ष रखने की कोशिश करें। उनसे हमारी यह अपेक्षा है कि वे न तो खुद चुनाव में उम्मेद-वारी करें और न किसी उम्मेदवार के लिए वोट जुटाने का प्रयत्न करें। हरएक क्रान्तिकारी आन्दोलन की एक 'लक्ष्मण-रेखा' होती है। भूदान-यज्ञ आन्दोलन को जिन्होंने अपनी सार्वजनिक प्रवृत्तियों में प्रधान स्थान दिया है, उनको नित्य जागरूक रहकर लोक-क्रान्ति की इस मर्यादा का संरक्षण करना चाहिए।

आशा है, इस निवेदन पर वे आस्थापूर्वक विचार करेंगे।

मुरारपुर, गया
२-८-'५५

: ४ :

शक्ति सत्ता में नहीं, सेवा में

(विनोबा)

[बोधगया-सर्वोदय-सम्मेलन के बाद आचार्य विनोबाजी का चुनाव और राज्यसत्ता सम्बन्धी चिन्तन और मन्थन चलता रहा। पुरी-सम्मेलन में उन्होंने चुनाव में सुधार की बात से आगे का विचार रखा। उन्होंने मुल्क की सही उन्नति और विकास के लिए बताया कि सत्ता सेविका हो और सेवा सार्वभौम हो। देश में एक ऐसा दल हो, जो लोकशक्ति को बढ़ाने का प्रयत्न करे और जिसका वजन सब पक्षों से भारी हो। इस लक्ष्य की तरफ राष्ट्र को बढ़ाना चाहिए। इसीमें कल्याण है। पार्लियामेंट की असमर्थता का भी उन्होंने उल्लेख किया। विनोबाजी के भाषण का यह अंश नीचे दिया जा रहा है।]

हमारे जो मित्र इधर-उधर भिन्न-भिन्न संस्थाओं में, राजनैतिक संस्थाओं में हैं, उन पर जिम्मेवारी आती है कि वे हम लोगों को कृपा करके थोड़ी मदद दें। मदद वे यह दें कि जहाँ वे बैठे हैं, वहाँ सेवा किस तरह ऊपर उठे, इसके बारे में वे प्रयत्न करें। चाहे वे पी० एस० पी० में हों या कांग्रेस में हों या और भी किसी राजनैतिक संस्था में हों। वहाँ वे पूरी कोशिश इस बात के लिए करें कि चुनाव का जो सारा जंजाल है, उससे भी अतिरिक्त रहनेवाली संस्था खड़ी हो। एक संस्था के अन्दर अनेक ग्रुप पैदा होते हैं, तो राजनीति में बड़ी खतरनाक बात मानी जाती है। मैं यह बात नहीं सुझा रहा हूँ। मैं ऐसा नहीं सुझा रहा हूँ कि ये जो संस्थाएँ राजनैतिक क्षेत्र में काम करती हैं, वे अपने अन्दर कुछ दूसरे-तीसरे ग्रुप बनावें। ऐसी कोई सिफारिश मैं नहीं कर रहा हूँ। मैं नहीं चाहता कि इनमें से किसीकी ताकत टूटे, जिसे कि वे ताकत समझते हैं। जब वे ही महसूस करेंगे

कि जिसको हम ताकत समझते हैं, वह ताकत नहीं थी, तब तो वे खुद उसका परित्याग करेंगे। उस हालत मे सच्ची ताकत उनको हासिल होगी। लेकिन जब तक उनको भास है, उस ताकत के बारे में, तब तक उनकी ताकत किसी प्रकार से टूटे, ऐसी हम इच्छा नहीं करते। परन्तु हम सुझाते यह है कि हमारे जो भाई भिन्न-भिन्न सस्थाओं में हैं, वे यह कोशिश करें कि जिसको वे अहिंसात्मक, रचनात्मक कार्य समझते हैं, वे उन सस्थाओं में प्रधान हो जायँ और दूसरी बातें गौण हो जायँ। चुनाव को कितना भी महत्त्व क्यों न दिया जाय, आखिर वह ऐसी चीज नहीं है कि उससे समाज के उत्थान मे हम कुछ मदद पहुँचा सकें। यह "डेमोक्रेसी" मे खड़ा किया हुआ एक यन्त्र है, एक 'फारमल डेमोक्रेसी', औपचारिक लोकसत्ता आयी है। वह माँग करती है कि राजकार्य में हर मनुष्य का हिस्सा होना चाहिए। इस वास्ते हरएक की राय पूछनी चाहिए और मतों की गिनती करनी चाहिए। यह तो हर कोई जानता है कि ऐसी कोई समानता परमेश्वर ने पैदा नहीं की है कि जिसके आधार पर एक मनुष्य के लिए जितना एक वोट है, उतना ही वह दूसरे मनुष्य के लिए भी हो, इस बात का हम समर्थन कर सकें। ऐसी कोई योजना ईश्वर ने नहीं की, लेकिन यह स्पष्ट है कि प० नेहरू को एक वोट है, तो उनके चपरासी को भी एक ही वोट है। इसमे क्या अक्ल है, हम नहीं जानते। मुझे वह शख्स मालूम नहीं है, जो इसकी अक्ल मुझे समझायेगा। परन्तु जब मै इसका समर्थन करता हूँ, अपने मन में, तब मुझे बड़ा ही आनन्द होता है। और वह समर्थन यह है कि उसमें मेरे वेदान्त का प्रचार होता है। इसमे आत्मा की समानता मानी गयी है। बुद्धि अलग-अलग है, कम बेशी है। शरीर-शक्ति कम-बेशी है। और भी शक्तियाँ हर-एक की अलग-अलग होती है। फिर भी हम हरएक को जो एक-एक वोट देते हैं, उसका इसी विचार से समर्थन होगा कि इसको माननेवाले लोग वेदान्त को मानते है। यह बहुत अच्छी बात है और उसी आधार पर हम उसका समर्थन करते हैं और हमको बहुत अच्छा लगता है कि एक पच्चर हमको मिल गया, जिसके आधार पर हम साम्ययोगी समाज की स्थापना कर सकते हैं। यह हमको बड़ा अच्छा आधार मिला है।

मत-शक्ति क्रान्ति नहीं ला सकती

परन्तु सोचने की बात है कि जहाँ तक व्यवहार का सवाल आता है कि मतों की गिनती करके एक राज्य हम चलाते हैं, तो उस काम का, मतों की उस गिनती का, बहुत ज्यादा महत्त्व नहीं हो सकता। ऐसा महत्त्व उसका नहीं है कि जिससे समाज-परिवर्तन हो जाय। समाज मे आज लोग क्या चाहते है, इसे जान लेने से, आगे क्या परिवर्तन हमको करना है, उसकी दिशा सोचने मे शायद उसको मदद हो सकती है। परन्तु लोग क्या चाहते हैं, इतना जानने से भी समाज के परिवर्तन की प्रक्रिया मे कोई मदद पहुँचती हो, सो बात नहीं। इसलिए चुनाव को कितना भी महत्त्व प्राप्त हो, व्यावहारिक क्षेत्र मे तो मूल्य-परिवर्तन का जहाँ तक सवाल है—और मूल्य-परिवर्तन के बिना तो समाज आगे नहीं बढ़ेगा—वहाँ वह गौण वस्तु हो जाती है। इतना समझकर हमारे जो लोग वहाँ है, वे इतना कार्य करें कि वहाँ बैठ करके बहुत जोर दें रचनात्मक काम के लिए और अगर उनको यह महसूस हो कि नहीं, वहाँ एक ऐसा मसाला है कि जो हमारे सारे प्रयत्न को शून्य बनाता है, विफल बनाता है, ऐसा कुछ मसाला वहाँ है, तो फिर उनको वहाँ से निकल आना चाहिए। ऐसा अगर वे करते है, तो हमारे जैसे लोग, कम शक्ति के लोग, जो बड़ा भारी जिम्मा उठाने के लिए मजबूर किये गये हैं, उनको कुछ मदद मिलेगी।

पुरी
२५-३-'५५

: ५ :

सीधे जनता तक पहुँचें

(विनोबा)

कुछ लोग कहते है कि अब पार्लियामेंट मे, असेम्बली मे हमारे लोग हैं, वे कहते हैं कि वहाँ हमारी आवाज कुछ ज्यादा कर नहीं पाती। कुछ अल्पमत में हैं, कुछ बहुमत में हैं। जो बहुमत मे हैं, वे चाबुक के नीचे हैं। इसको अंग्रेजी में "ह्विप" कहते हैं। तो जो बहुमत में है, वे चाबुक के नीचे हैं और जो अल्पमत मे हैं, वे तो अल्प ही हैं। उनका क्या चलेगा? उनके वास्ते चाबुक की भी जरूरत नहीं है। उनके लिए चना भी नहीं है। सिर्फ तबेले मे ही हैं। तो जो दोनों प्रकार के लोग पार्लियामेंट मे जाकर बोलते हैं कि हम कुछ अच्छी बात वहाँ रख सकते हैं और अपनी आवाज हम सरकार मे पहुँचाते हैं, तो क्या सरकार इतनी बहरी बन गयी है कि बाहर सभा म कोई बात बोलेगा, तो वह नहीं सुनेगी और पार्लियामेंट मे जाकर गिरफ्तार होकर सुनेगी? क्या वहाँ बोलेंगे तभी आवाज सुनेंगे, नहीं तो नहीं सुनेंगे? क्या आप यह समझते हैं कि हम एक काम करते चले जायँ, जनसमूह में पैठे, जनता की ताकत बनती जाय और उस हालत मे हम कहीं व्याख्यान दे देते हैं, प्रार्थना-सभा मे समझिये, उसका जो असर होगा, उससे ज्यादा असर हम यदि पी० एस० पी० मे दाखिल हो जायँ, या कांग्रेस मे दाखिल हो जायँ और फिर वहाँ जाकर एक व्याख्यान दें, पार्लियामेंट मे दे दें, तो ज्यादा असर होगा? यह सोचने की जरूरत है कि अपने मत-प्रदर्शन के लिए समुचित स्थान कौन-सा है? इन नौकरों के पास जाकर हम क्या रोयें अपनी कहानी? उनके मालिकों के पास ही हम क्यों न पहुँचें? और मालिक कौन है? हिन्दुस्तान मे आज मालिक कौन है? मालिक है जनता। तो सीधे हम मालिकों

के पास जायँ और अपनी बात रखें, तो उसका सीधा असर नौकर पर होगा और वह काम कर लेगा। हम वहाँ नौकरों के पास जाते है, तो वे कहते है कि आप कहते तो है, लेकिन लोकमत क्या है? अगर उनको यह समझाने जायँ कि भाई, खादी के पक्ष मे मिलो को बन्द करो तो वे पूछते हैं, लोकमत क्या है? लोकमत अगर वैसा हो, तो हम क्या कर सकते है, पर इसके लिए लोकमत अनुकूल नहीं है। इस तरह हर बात मे वे लोकमत की दुहाई देंगे और हमारा आपका विचार अच्छा है, यह भी साथ-साथ कहते जायेंगे। हमारे विचार को गलत कहते, तो और भला होता, जरा चर्चा भी चलती। पर जब हम कहते है कि आपका विचार अच्छा है, तो बात खतम हो गयी। जहाँ हमारे विचार को अच्छा बना दिया, वहाँ हमारा मुँह तो बन्द हो गया और उनका तो हाथ चलता नहीं, क्योंकि वे कहते हैं कि हमारा हाथ तो ऐसे यत्र मे फँसा है और उस यत्र को चलाने के लिए तो जनता का हमको मेण्डेट, आदेश, है। तो हमारी जबान कुठित ही है वहाँ पर। इस वास्ते लोकमत तैयार करने मे हो हमारी जबान, हमारी बुद्धि, हमारी शक्ति, जो हमारे हाथ को है, सारी, सीधे लोगों के पास पहुँचकर ही उनको जाग्रत करने मे लगनी चाहिए, ऐसा हमको लगता है।

पुरी
२५-३-'५५

: ६ :

लोकशाही की कमजोरियाँ

(विनोबा)

यह जो लोकशाही का विचार है, उसमें एक न्यूनता रह गयी है। उसमें आत्मा की एकता को पहचानकर वोट का अधिकार तो दे दिया। लेकिन फिर वे वोट की गिनती करने लगे और उन्होंने तय किया है कि ५१ लोगों का एक मत है और ४९ लोगों का दूसरा मत है, तो ५१ लोगों को अधिक मान्यता दी जायगी और राज्य-सत्ता उनको दी जायगी। यहाँ पर वे वेदांत को भूल गये। वेदांत उनको अच्छी तरह पचा नहीं है। उसका एक अंश उनके ध्यान में आया, पर दूसरा अंश उनके ध्यान में नहीं आया। जैसे उन्होंने आत्मा की एकता को मान्य किया, वैसे उनके ध्यान में आना चाहिए कि आत्मा के संयोग से कोई वृद्धि नहीं होती है, आत्मा की गिनती नहीं होती है। उनके ध्यान में यह आना चाहिए कि यह गणित का विषय नहीं है, वेदांत है, इसीलिए इसमें संख्या का सवाल गौण हो जाता है। सर्वोदय ने वह कमी पूरी की है।

सर्वोदय कहता है कि भाई, जो वेदांत तुम सीखे हो, उसको तुम पूरी तरह से पूर्ण करो। सबका विचार मान्य करके काम करो, पाँच मनुष्यों में से तीन मनुष्यों की राय एक ओर और दो मनुष्यों की राय दूसरी ओर, तो तीन मनुष्यों का विचार सत्य, यह विचार गलत है और चार मनुष्य का अभिप्राय एक ओर और सिर्फ एक मनुष्य का अभिप्राय दूसरी ओर है, तो चार मनुष्यों के अनुकूल फैसला लिया जाय, यह भी गलत है। पाँचों एकमन से जो राय देंगे, जो फैसला देंगे, वही मान्य होगा, इस विचार को कबूल न करने के कारण दुनिया के कुल देशों में मेजॉरिटी और माइनॉरिटी के झगड़े चले हैं, उनके कारण गाँव-गाँव में पक्षभेद होते हैं और गाँव गाँव का छेद होता है।

इलेक्शन की गलत राजनीति

आप लोगों ने सुना होगा कि इस भूदान-आंदोलन मे उडीसा के एक जिले मे नौ सौ गॉव पूरे-के-पूरे दान मे मिले है। याने उन गाँवो मे जितने लोगों के पास जमीन थी, जो मालिक कहलाते थे, उन्होंने अपनी मालकियत छोड दी और अपनी कुल-की-कुल जमीन ग्रामवासियो के सुपुर्द कर दी। यह ग्रामदान भूदान-आंदोलन का परम उत्कर्ष है। इतना उत्तम कार्य कोरापुट मे हुआ है, परतु अब सवाल यह पैदा होता है कि आगे इलेक्शन आनेवाला है, इसीलिए भिन्न-भिन्न राजनैतिक पार्टियॉ गॉवों मे पहुँच जाती है और वहॉ भेद पैदा करने की कोशिश करती है। ये गॉव जो अपनी मालकियत छोड चुके है, जिन्होंने अपना एक परिवार बना लिया है, वहॉ जाकर यह छेद बनाना चाहता है। वे यह नहीं समझते है कि इस तरह की राजनीति, जिससे गॉव के दो-दो टुकड़े हो जाते हैं, उससे हिन्दुस्तान का क्या भला हो जायगा ? हिन्दुस्तान मे जो प्रान्तीय भेद थे, वे क्या काफी नहीं थे ? हिन्दुस्तान मे जो भिन्न-भिन्न भाषाऍ है और भाषाओं के झगड़े चले है, वे भेद क्या कम थे ? जाति-भेद की अग्नि तो समाज को लगी ही है, वह क्या कम है ? और धर्म के झगड़े भी यहॉ खड़े है, क्या वे काफी नहीं है ? यहॉ पर असख्य मत-सम्प्रदाय के भेद थे, वे क्या कम हो गये ? यहॉ पर ब्राह्मण-अब्राह्मण के जो झगड़े चलते है, वे क्या कम थे ? अब इसके बीच यह पार्टी का भेद डालकर भारत की क्या उन्नति होनेवाली है ? उसका परिणाम यह होता है कि किसी अच्छे काम को करने के लिए भी कोई पक्ष इकट्ठे नहीं होते है। वे कहते हैं कि उसमे जिस मनुष्य के साथ हम काम करेंगे, उसका भी महत्त्व बढ़ेगा। इसीलिए अच्छा काम भी करेंगे, तो हमारी सस्था को इसकी क्रेडिट मिलनी चाहिए। सामनेवाला कोई अच्छा काम करता है, तो उसके हेतु पर आरोप करते है और उसका वह कार्य यशस्वी न हो, इसकी भी कोशिश की जाती है। इतने सारे भेद इसलिए है कि डेमोक्रेसी ने सख्या का आधार मान्य किया है। उन्होंने आत्मा की एकता कबूल की, लेकिन फिर आत्मा की गिनती करने लगे। लेकिन गिनती उनकी करनी होती है, जो एक नहीं होते, अलग-अलग होते है। इस

हालत मे सख्या पर जोर देते हैं, तो बुद्धि पर क्यों नहीं देते हैं ? क्या यह बात सही है कि इक्यावन मनुष्य की बुद्धि मिलाकर उनचास मनुष्यों की बुद्धि से हमेशा ज्यादा होती है, आजकल डेमोक्रसी मे मेजॉरिटी का राज्य चलता है, तो हमने एक दफा विनोद मे सवाल पूछा था कि इस दुनिया में आज की हालत में अपने देश में मूर्ख लोग ज्यादा है कि अक्लवाले ज्यादा हैं ? तब वे बोले कि मूर्खों की सख्या अधिक है। अधिक सख्या का सिद्धान्त आपने उठाया, तो क्या आप मूर्खों का राज्य करना चाहते हैं ? इसीलिए वेदान्त-सिद्धान्त को ठीक तरह से समझ लीजिये और कबूल कर लीजिये कि सिद्धान्त यही है कि आत्मा में भेद नहीं है। इसीलिए सबका समाधान जिसमे होता है, वही करना चाहिए।

काचीपुरम्
२६-५-'५६

: ७ :

अहिंसक राजनीति मे विरोधी पक्ष

(जे० कॉ० कुमारप्पा)

अहिंसक राज्य मे 'राजा का विरोधी पक्ष' (हिज मेजेस्टीज अपोजिशन के लिए जगह नहीं है। फिर भी 'विरोधी पक्ष' का काम तो होना ही चाहिए। उसके बिना कोई सरकार काम नहीं कर सकती। विरोधी पक्ष का मुख्य फर्ज है, सरकार की नीति को कुछ खास दिशाओं मे मोड़ना। नुक्ता-चीनी करनेवाला की जरूरत होती है। लेकिन उनका दायरा हिंसक उपायों से अलहदा होना चाहिए। इग्लैण्ड मे जो विरोधी पक्ष है, वह हिंसक राज्य-व्यवस्था का ही अग है। मेरा सुझाव यह है कि विरोधी पक्ष नदी के किनारों की तरह होना चाहिए। नदी के किनारे, जब तक वे मजबूत चट्टान के हों, नदी की धारा को उसके पाट मे मर्यादित रखते हैं। लेकिन चट्टान तो चट्टान ही है। इसलिए वह नदी के पाट मे लुढककर उसकी धारा को रोक नहीं देती। इग्लैण्ड मे ऐसा

होता है। विरोधी पक्ष के मन पर हमेशा यह बात असर करती रहती है कि आये दिन हम भी हुकूमत की गद्दी पर होंगे।

प्रतिस्पर्धा का गलत अर्थशास्त्र

नदी के प्रवाह का नियमन उसके किनारे जिस तरह करते हैं, उसी तरह देश की सरकार का नियमन उन सत्ताओं को करना चाहिए जो कि सरकारी ढाँचे से बाहर की हों। इंग्लैंड इस बात पर गर्व करता है कि उसकी पार्लियामेंट दुनिया भर की पार्लियामेंटों की 'आदिमाता' है। वहाँ सरकारी खर्च से 'राजा का विरोधी पक्ष' चलाया जाता है। उसका काम यह है कि सरकार जो कदम उठा रही हो या उठाने का इरादा करती हो, उसका नियंत्रण करने के लिए उस पर लोकमत की तेज रोशनी डाले। ब्रिटिश पार्लियामेंट वह रणभूमि है, जहाँ राजनैतिक योद्धाओं में अनेक प्राणांतक द्वन्द्व खेले जाते हैं। जो योद्धा परास्त होते हैं, वे विजेताओं के लिए जगह खाली कर देते हैं। पार्लियामेंट के वाद-विवाद में अगर दाँव लग गया, तो आज जो विरोधी बेंचों पर बैठे हैं, वे ही कल बड़ी शान से सरकारी बेंचों पर बैठे हुए दिखाई देंगे। ब्रिटिश पार्लियामेंटरी पद्धति में विरोधी पक्ष की यही भूमिका है। प्रतिस्पर्धा का अर्थशास्त्र राजनीति के क्षेत्र में दाखिल किया गया। उसका यह नतीजा है।

साम्राज्यवाद का लालच

आर्थिक क्षेत्र में जो साम्राज्यवाद मौजूद है, उसका प्रतिबिंब मन्त्रिमण्डल की बनावट में भी दिखाई देता है। केंद्रित उद्योगों के लिए यह जरूरी है कि संसार की दश-दिशाओं से कच्चा माल जुटाया जाय और उसका पक्का माल बनाकर दुनिया के हर कोने के बाजारों में भेजा जाय। इसके लिए पैसे का उपयोग बहुत बड़े पैमाने पर करना पड़ता है और यातायात के साधन तथा राजनैतिक सत्ता अपने हाथ में लेने की आवश्यकता पैदा होती है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए वैदेशिक नीति, आर्थिक व्यवस्था, सेना, नाविक सेना और वैमानिक सेना इत्यादि साधन अनिवार्य हो जाते हैं। इसलिए ब्रिटिश-मंत्रिमंडल में इन महकमों को बड़ा

इज्जत की जगह दी जाती है और उनकी तरफ हर शख्स लालचभरी आँखों से देखता रहता है।

स्पर्धा और साम्राज्यवाद दोनों की जड़ें हिंसा में हैं।

अर्थ-रचना अहिंसा और सहयोग की हो

हमारे देश ने शासन की बागडोर सम्हाली है। अगर हम अहिंसा के रास्ते पर चलना चाहते हैं, तो हमारे शासन का स्वरूप क्या होगा ? हमारी सरकार को भी एक ऐसी 'परिशोधक' (गलती सुधारनेवाली) ताकत की जरूरत होगी, जो 'विरोधीपक्ष' का फर्ज अदा कर सके। लेकिन हम तो ऐसी अर्थ-व्यवस्था चाहते हैं, जो कि सहयोग की बुनियाद पर खड़ी हो, न कि स्पर्धा या होड़ की बुनियाद पर। हमारी अर्थ-व्यवस्था में विरोधी सदस्य इस ताक में नहीं रहेंगे कि कब पार्लियामेंटरी बहस का पासा हुकूमतनशीन पार्टी के खिलाफ पलटता है और कब हम हुकूमत पर सवार होते हैं। अहिंसा और सहयोग की अर्थ-रचना में व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा के लिए कोई गुंजाइश नहीं। हमारा उद्देश्य मंत्रियों की जगह लेने का नहीं होना चाहिए, बल्कि हमें उनके सामने समाज-रचना के ऐसे नमूने पेश करने चाहिए, जिनका वे अनुकरण कर सकें। रचनात्मक कार्यकर्ताओं को अपने व्यक्तिगत उदाहरण से रास्ता दिखानेवाली मशाल की तरह उन्हें सही रास्ते की तरफ ले जाना चाहिए।

लोकसेवकों का संगठन

अहिंसक अर्थ-रचना में रचनात्मक कार्यकर्ताओं पर यह बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ती है। इस मार्गदर्शक शक्ति का विकास करने के लिए रचनात्मक कार्यकर्ताओं के एक संगठन की जरूरत होगी। उनकी लोकसेवा ही उनकी शक्ति का अधिष्ठान होगी और उनके काम का गुण ही उनका अधिकारपत्र होगा। मंत्री इस संस्था से प्रेरणा पायेंगे और वह संस्था इस देश के धर्म-निरपेक्ष राज्य को सलाह तथा मार्गदर्शन देगी। इस कर्तव्य को पूरा करने के लिए यह संस्था ऐसे त्यागी लोगों की बननी चाहिए, जिनकी एकमात्र आकांक्षा लोकसेवा ही हो।

ऐसी राज्यव्यवस्था मे मंत्रिमंडल के हाथ मे ऐसे महकमे होगे, जो स्वयंपूर्ण अर्थ-रचना के लिए जरूरी है। खेती, जमीन की तरक्की, जमीन के कटाव का इलाज, खेती के लिए नयी जमीने तैयार करना, मौजूदा जमीनों को खाद देना, आब-पाशी, बाढ-नियत्रण, जगल, ग्रामोद्योग और गृहोद्योग, खनिज पदार्थ, भारी उद्योग, लोक-स्वास्थ्य, शिक्षण और गृह-विभाग—ये मुख्य महकमे होगे। ऐसी राज्य-व्यवस्था मे विदेश-नीति, वित्त-विभाग और सरक्षण-विभाग, चाहे वे कितने ही महत्त्व के क्यों न हों, फिर भी उनका इतना महत्त्व नहीं रहेगा कि वे मंत्रियो को सौंपे जायँ।

इस तरह की राजनैतिक व्यवस्था मे रचनात्मक कार्यकर्ताओं का यह सगठन लोगों को शोषण से बचाने के लिए जिरहबख्तर का काम देगा। इस भूमिका पर जो सरकार बनेगी, वह लोकनीति को आवश्यक प्रोत्साहन देगी और उनके कल्याण का निश्चित रूप से आयोजन कर स्वराज्य को जनता तक पहुँचायेगी।

८ अगस्त, '४८

: ८ :

लोकशाही की तीसरी शक्ति

(शंकरराव देव)

वस्तुनिष्ठ या आत्मनिरपेक्ष (Objective and Impersonal) विचार तथा आचार आज दुर्लभ हो गया है, यह बडे दुःख के साथ कहना पड़ता है। मेरे मत से वस्तुनिष्ठ तथा आत्मनिरपेक्ष विचार और आचार लोकशाही का प्राण है। आज की शबल लोकशाही से भी अगर यह प्राण लुप्त हो गया, तो भारत मे लोकशाही की समृद्धि मृगजलवत् सिद्ध होगी। फिर सर्वोदय-समाज की प्रस्थापना का तो प्रश्न ही नहीं है, क्योंकि जिस समाज के व्यक्तियों मे वस्तुनिष्ठ तथा आत्मनिरपेक्ष विचार और आचार का गुण न हो, उन व्यक्तियों का बना हुआ समाज सर्वोदय-समाज हो ही नहीं सकता।

भिन्न-भिन्न देशों की लोकशाही यदि अपने-अपने भिन्न मार्गों से विकसित नहीं होगी, तो वह लोकशाही ही नहीं रहेगी या नहीं कही जा सकेगी। लोकशाही,

लोगो द्वारा निर्मित राज्यपद्धति या जीवनपद्धति का नाम है। रत्नागिरी जिले के और उस जिले की किसी खास जगह के 'हपुस' आम की कलम या ठाणे जिले के 'चिक्कु' की कलम दूर के किसी इलाके मे ले जाकर लगायी जाय, तो उस इलाके की आबहवा का तथा जमीन का असर उस कलम की वृद्धि पर और उसके रस तथा रुचि पर होता है, यह हम सबका अनुभव है। प्रकृति का यह नियम लोकशाही के लिए भी लागू है। जैसा लोगो का सत्त्व (Being) और जैसी उनकी प्रकृति (Genius), वैसी उनकी लोकशाही। अर्वाचीन लोकशाही का जन्म पश्चिम में हुआ। फिर भी इग्लैण्ड, फ्रान्स, अमेरिका, स्कॅण्डेनेविया तथा दक्षिण और पूर्व यूरोप के देशो मे प्रत्येक देश के लोगों का सत्त्व और प्रकृति की विशेषता वहाँ की लोकशाही में पायी जाती है, तब भारत ही इस नियम के लिए अपवाद कैसे हो सकता है?

पिछली डेढ दो सदियो तक अंग्रेजों का हम पर राज्य रहा। इसलिए उनका धर्म, उनकी संस्कृति, उनकी शिक्षण-पद्धति, समाज पद्धति, राजनैतिक तथा आर्थिक विचार-प्रणाली और सस्थानिष्ठ व्यवहार इत्यादि सारी बातों का हमारे मन पर गहरा परिणाम हुआ है। इन नाना क्षेत्रो में उनकी कई बाते हमने स्वीकार कर ली है, बल्कि उनमे से कुछ हमने आत्मसात् भी कर ली हैं। हमारी लोकशाही का सविधान इग्लैण्ड तथा अन्य पाश्चात्य देशो की लोकशाही के नमूने पर बनाया गया है। मधुमक्खी जिस तरह सभी फूलो से मधु लेती है, उसी वृत्ति से दूसरे देशों की लोकशाही मे जो जो अच्छा मालूम हुआ, उसका सग्रह हमने अपने सविधान म किया। सविधान बनाते समय हमारी वृत्ति अधिकतर, बल्कि यह कहिये कि पूरी तरह, बहिर्मुख थी। सविधान बनाते वक्त हमें मानों इस बात का कोई बोध ही नहीं था कि हमारी भी अपनी कोई स्वतत्र प्रकृति और परपरा है। इसलिए भारतीय लोकराज्य के सविधान पर यह जो आरोप किया जाता है कि उसमे हमारी प्रकृति या परपरा का प्रतिबिंब नहीं है, उस आरोप से इनकार करना मुश्किल है। इस विषय मे हमारी कोई प्राचीन प्रकृति या परपरा है भी, या है ही नहीं, यह प्रश्न विवादास्पद है। इसलिए उसे छोड़ दे, तो भी हमारी स्वतन्त्रता की लड़ाई मे हमारी जो प्राचीन परम्परागत प्रकृति प्रकट हुई और स्वतत्रता-सग्राम के

सिलसिले मे गाधीजी ने हमारे सामने जो ध्येय रखा और उनके लिए उन्होने जिन साधनों का उपयोग किया, उनका भी कोई विशेष परिणाम हमारे सविधान में नहीं दिखाई देता, यह बात भी खेद के साथ माननी चाहिए। परतु सविधान बनाते समय जो बात नहीं हो सकी, उसका होना सविधान को कार्यान्वित करते समय अनिवार्य ही है, इसका अनुभव, मै समझता हूँ, आज हम सबको हो रहा है।

हमने गाधीजी के नेतृत्व मे अहिंसा या सत्याग्रह के अर्थात् हृदय-परिवर्तन के मार्ग से स्वातन्त्र्य प्राप्त करने का प्रयत्न किया। हाल ही मे दूसरे एक सन्दर्भ मे लोकसभा के अपने एक भाषण मे पडितजी ने कहा था, "हम भी एक क्राति की सन्तान हैं।" विचार और आचार के क्षेत्र मे यह क्राति गाधीजी प्रणीत क्राति ही है। इस क्राति मे हमने एक निराली ही तीसरी शक्ति का उपयोग किया। अब तक ससार सिर्फ दो ही शक्तियों से परिचित था: एक बौद्धिक और दूसरी पाशविक। आज की पाश्चात्य लोकशाही इन्हीं दो शक्तियों को मानती है और उनका उपयोग करती है। हमने अपनी आजादी की लड़ाई मे बौद्धिक सिद्धान्त का उपयोग किया, यह तो स्वाभाविक ही था। परतु जहाँ और जब यह शक्ति कुठित हो गयी, वहाँ उसे पशुबल का आधार न देकर गाधीजी के नेतृत्व मे हमने उसे नैतिक शक्ति का आधार दिया। लोकशाही को चरितार्थ करने मे हम तीनो शक्तियों से काम ले रहे हैं। इन तीनो शक्तियों मे से पहली दो शक्तियों का उपयोग दूसरे देशों ने किया और आज भी कर रहे हैं। हम भी यदि इन्हीं दो शक्तियों का उपयोग करें, तो ऐसी कोई तर्कसङ्गत तथा न्यायसङ्गत आशा के लिए जगह नहीं रहेगी कि दूसरे देशों मे जिस मार्ग से लोकशाही का विकास हुआ, उनसे कुछ भिन्न मार्ग से हमारे देश की लोकशाही का विकास होगा या उसमे हमारी प्रकृति और परपरा का यथार्थ प्रतिबिम्ब दिखाई देगा। जिस मात्रा मे हम उस तीसरी शक्ति का उपयोग करेंगे, उसी मात्रा मे हमारी लोकशाही का विकास अन्य देशों की लोकशाही की अपेक्षा भिन्न मार्ग से होगा और उसमे हमारी प्रकृति एव परम्परा का यथावश्यक आधार रहेगा। लोकशाही के उज्ज्वल भविष्य की दृष्टि से हमारे लिए यह अभिमान का विषय है। और ससार की दृष्टि मे सुदैव

का लक्षण है कि इस तीसरी शक्ति का शुद्ध रूप में प्रयोग करने का प्रयास हमारे देश में हो रहा है।

लोकशाही के प्रयोग मे आज इस तीसरी शक्ति से इस देश मे काम लिया जा रहा है। नतीजा यह है कि लोकशाही पक्षनिष्ठ याने कम-से-कम दो पार्टियों की होनी चाहिए, वह इसका स्वभाव ही है, यह जो विचार पश्चिम से आया, उसमे क्रांति होने के लक्षण दिखाई देते है। अब तो पश्चिम के भी कुछ विचारवंत लोग कहने लगे हैं कि पक्ष-पद्धति एक दोष है, जो लोकशाही मे पैदा हो गया है। इस दोष से लोकशाही को मुक्त कैसे करें, इसका केवल विचार ही नहीं, अपितु आचार भी हमारे देश मे शुरू है।

भारतीय हृदय पर या मत पर इस तीसरी शक्ति का अर्थात् मन-परिवर्तन की नैतिक शक्ति का परिणाम होता है। अत: आज यहाँ ऐसी परिस्थिति पैदा हो गयी है कि कोई भी राजनैतिक पक्ष अपने साध्य और साधन पर दृढ रहकर सत्तावादी राजनीति का आचरण कर ही नहीं सकता। उदाहरण के लिए कम्युनिस्ट पार्टी को ऐगिट वल्व का तंत्र छोड़कर मतपेटी (बैलट बॉक्स) का आश्रय करना पड़ा है। प्रजासमाजवादी पक्ष के अनभिषिक्त अध्वर्यु श्री जयप्रकाशजी ने सर्वोदय को स्वीकार किया है और इस घटना का उनके पक्ष की विचारधारा पर गहरा असर हुआ। काग्रेस को समाजवादी पद्धति की समाज-रचना का ध्येय स्वीकार करना पड़ा है। हाल ही मे प० जवाहरलालजी ने सार्वजनिक रूप से घोषित किया है कि भारत के लिए अप्रत्यक्ष निर्वाचन का सिद्धान्त ही हितकर होगा। भिन्न-भिन्न पक्षों के उद्देश्य और साधनों मे लोगों को कोई खास फर्क नहीं दिखाई देता और न वे पक्ष कोई खास फर्क दिखा ही सकते हैं। काग्रेस की दूसरी पचवार्षिक योजना से प्रजा-समाजवादी और साम्यवादी पक्षो के कुछ फुटकर मतभेद है, किंतु तत्त्वत: इन दोनों पक्षों के लोकसभा स्थित नेताओं ने इस योजना को सामान्य रूप से अपनी स्वीकृति दी है। जब काग्रेस ने अपना ध्येय लोकतात्रिक समाजवाद या समाजवादी लोक-तत्र की स्थापना करना निश्चित किया है। फिर भी लोगों को वह आग्रहपूर्वक यह समझाने की कोशिश करती है कि हमारी समाज-रचना मे और सर्वोदय-समाज-पद्धति म फर्क नहीं है। मतलब यह कि इस देश में मत-परिवर्तन की जो प्रक्रिया

शुरू हो गयी है, उसमें सभी राजनैतिक पक्ष, उनके मत और कार्यक्रम पिघल रहे हैं। किसीके पैरो के नीचे स्थिर भूमि नहीं रह सकती।

तीसरी शक्ति के प्रयोग

दूसरे देशों की तरह इस देश मे भी अगर मत-परिवर्तन की प्रक्रिया का आधार केवल बुद्धि ही होती, तो यहाँ ये परिणाम कदापि नहीं निकल सकते थे। सर्वोदयनिष्ठ व्यक्तियो से लेकर साम्यवादी पक्ष तक सभी अपने-अपने मत की प्रस्थापना के लिए या अपने-अपने कार्यक्रमो को कार्यान्वित करने के लिए निःशस्त्र प्रतिकार, असहयोग, कानून-भग, उपवास आदि के रूप मे, चाहे कितनी ही अशुद्ध अवस्था मे क्यो न हो, इस तीसरी शक्ति के ही भिन्न-भिन्न अगो का प्रयोग कर रहे हैं। मैं समझता हूँ कि इस देश मे पक्षभेदो की आज की अवस्था इसीका परिणाम है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा तथा राजनैतिक पक्षों द्वारा किये जानेवाले इस तीसरी शक्ति के प्रयोगो मे जैसे-जैसे अशुद्धता कम होगी, वैसे-वैसे भारतीय लोकशाही समृद्ध होती जायगी। फिर एक सत्ताधारी पक्ष और एक सत्ताकांक्षी विरोधी पक्ष, यह जो आज की लोकशाही का सदोष रूप है, उसका अन्त होगा। गांधीजी जिस अहिंसात्मक शुद्ध लोकशाही की स्थापना करना चाहते थे, उसके रास्ते पर भारत के कदम तेजी से आगे-आगे बढने लगेगे, दूसरे देश भारत से राह पूछते हुए उसका अनुसरण करने लगेगे और धीरे-धीरे सारा ससार उसी रास्ते पर चलने लगेगा।

—एक पत्र से

भूदान-यज्ञ
२१-६-'५६

: ६ :

जनतंत्र की लाचारी

(नवकृष्ण चौधुरी)

सरकार पहले सिर्फ टैक्स वसूल करने तथा अमनचैन रखने आदि का काम करती थी। अब लोककल्याण-राज्य की कल्पना आयी है कि सरकार को हरएक काम करना चाहिए। सरकार ही तालीम, आरोग्य, खेती, सहयोग, कारीगरी आदि के मामले मे सब कुछ करेगी। पाँच साल मे लोग एक ही बार वोट देंगे और फिर हाथ पर हाथ धरकर बैठेंगे। यह ठीक है कि यह प्रक्रिया अभी आखिरी हद तक नहीं पहुँची है और लोग बहुत सारे काम अपने आप ही कर लेते है, लेकिन यह शका मौजूद है कि अगर कभी सचमुच इस तरह सारी व्यवस्था सरकार के कब्जे मे आ जाय, तो व्यक्ति-स्वातन्त्र्य भी खतरे मे होगा, क्योंकि लोग अधिक से अधिक सरकार पर अवलंबित हो जायेंगे।

अमेरिका की शोचनीय स्थिति

आज अमेरिका आदि के समाजशास्त्री और मानसशास्त्रियो मे यही विचार चल रहा है कि समाज की छोटी-बड़ी जिम्मेवारी खुद लोग ही कैसे उठायें?

वहाँ शासन-व्यवस्था तथा अर्थ-व्यवस्था आदि बहुत ही केंद्रीभूत हो जाने के कारण उसमे अपनी बुद्धि, प्रतिभा तथा कार्यशक्ति के प्रयोग का मौका लोगों को बहुत ही कम मिलता है। इससे वहाँ के लोग अपने जीवन मे काफी व्यर्थता महसूस करते है और परिणाम मे उन देशो मे आत्महत्या और मानसिक व्याधियाँ बढ़ती जा रही है। अमेरिका मे भौतिक सुखों की कमी तो नहीं है, परतु इन्सान के लिए इतना ही काफी नहीं होता है। खाना, पहनना, मकान, दवा-दारू आदि के अलावा इन्सान के जीवन की सार्थकता के लिए और भी कुछ चाहिए। उसको पड़ोसियो की सेवा का तथा उनके लिए त्याग करने का कुछ मौका मिलना चाहिए।

आपस में मिलजुल कर कोई नया पराक्रम करने का भी मौका मिलना चाहिए। इन्सान बहुतेरे मार्गों से अपने को सार्थक बनाना चाहता है। पर सरकार के एक बने-बनाये साँचे में सबको ढाल दिया जाय, तो मानव की मानवता ही दब जायगी।

रूस की दयाजनक स्थिति

रूस के भौतिक विकास के लिए स्टालिन ने काफी काम किया था, फिर भी आज उस देश के लोग यही शिकायत कर रहे है कि उसीके कारण वहाँ की संस्कृति, कला और विज्ञान का विकास रुक गया था। ऐसा कहा गया है कि इस पतन में से अपने को उठाने मे इस देश को बीसों साल लग जायेंगे। दुनिया की इस प्रकार की स्थिति को नजर में रखते हुए ही हमको लोकनीति पर सोचना चाहिए।

जमीन का कानून असफल क्यों ?

जनकल्याण के कार्यक्रमों की दृष्टि से अपनी-अपनी चुनाव-सबंधी घोषणाओं (Election manifesto) मे किसी भी पक्ष की ओर से कोई कमी नहीं रखी जाती। लेकिन फिर भी भूमि और दूसरी समस्याओं के बारे में मूलभूत सुधार के लिए कोई कानून नहीं बन पाता। इसके कारणों की हम यदि छान-बीन करें, तो यही पायेंगे कि अपनी जमीन बटाई पर देकर गुजारा करनेवाले मध्यम-वर्ग के लोग ही आज की विधान-सभाओं के सदस्य हैं, फिर वे किसी भी राजनैतिक पक्ष के क्यों न हों! वहाँ मजदूर या बटाईदार को कोई स्थान नहीं है। निर्वाचन की प्रणालिका भी जिस प्रकार बनी है और निर्वाचन के क्षेत्र (Constituencies) भी जिस प्रकार के बड़े-बड़े बने हैं, उनको देखते हुए यह कतई संभव नहीं है कि कोई गरीब मनुष्य चुनाव के लिए खड़ा हो। वैसे ही किसीको खड़ा होना हो, तो उसे किसी पैसेवाले राजनैतिक पक्ष का सहारा लेकर खड़ा होना पड़ेगा और यही देखा गया है कि जो भी थोड़े से हरिजन तथा आदिवासी आदि विधान-सभाओं में जाते हैं, वे धीरे-धीरे जमीन खरीद कर बटाई पर देने लग जाते हैं और इस तरह शोषक-वर्ग में चले आते है।

चुनाव के समय गाँव की स्थिति का अध्ययन किया जाय, तो वहाँ के लोगों

मे कोई आदर्शगत विचार देखने को नहीं मिलेगा। हरएक गाँव मे अक्सर स्थानीय झगड़ों के कारण दो-तीन पक्ष रहते हैं। चुनाव के समय इन्हीं पक्षों के नेताओं को वोट हासिल करवा देने के लिए कांग्रेस, सोशलिस्ट या कम्युनिस्ट पक्ष के प्रचारक पकड़ते हैं। किसी एक पक्ष का प्रचारक अगर पहले ही गाँव मे पहुँचता है और किसी एक पक्ष के मुखिया को अपनी ओर खींच लेता है, तो वे उस पक्ष के हो जाते हैं। फिर दूसरे विरोधी पक्ष के लोग किसी दूसरे राजनैतिक पक्ष मे शामिल हो जाते हैं। इस तरह गाँव की कौनसी पार्टी किस राजनैतिक पक्ष को स्वीकार करती है, यह सिर्फ संयोग की बात होती है।

इस प्रकार आज एक अवास्तविक स्थिति पैदा हो गयी है। सिर्फ विरोध करना है, इसलिए विरोध किया जाता है। देश की भलाई के लिए क्या करना चाहिए, इस बात पर वास्तव मे पार्टीवालों मे अब मुख्य-मुख्य सवालों के बारे में बहुत बड़ा मतान्तर फर्क नहीं रहा है। मतान्तर दिखाने के लिए पार्टीवाले बहुत सारे छोटे-छोटे गौण सवालों को ही ढूँढ निकालते है, किसी विषय की सूक्ष्म तफसील मे जाकर बाल की खाल निकालते हैं। ऐसी स्थिति देश मे बनी रही, तो देश की उन्नति नहीं होगी, यह श्री अशोक मेहता जैसे लोग भी अब महसूस करने लगे हैं। विकास के लिए त्याग चाहिए। पेट के लिए आज ही सब न खा डालकर कल के लिए भी पूँजी लगानी चाहिए। पर, आज किसी भी पक्ष की सरकार इस तरह के काम करने जाय, तो यह संभावना है कि दूसरी पार्टीवाले जनता को भड़कायें कि 'देखो, ये तुम्हारे पैसों से क्या-क्या करने जा रहे हैं?' परिणामत देश के विकास मे रुकावटें आ पहुँचती है। इसलिए देश की विशिष्ट समस्याओं के बारे में कोई ऐसा सर्वसम्मत कार्यक्रम कायम करने की आवश्यकता आज के सभी पक्षों के मनन-शील लोग महसूस कर रहे है, जिसके बारे मे मतभेद जाहिर न किया जाय और उसको सफल बनाने मे हर कोई सहकार करे। सर्वोदयवालों की तटस्थ वृत्ति को कई लोग आज शका की दृष्टि से देखते है। पर पहले जब भारत ने विश्व-राजनीति मे तटस्थ वृत्ति अपनायी, तब भी रूस तथा अमेरिका, दोनों चिढ गये थे। लेकिन भारत की तटस्थता का महत्त्व आज वे दोनों महसूस कर रहे है। वे देखते हैं कि इस तरह का एक तटस्थ पक्ष रहने के कारण ही उन्हें अपनी धमकाने-डरानेवाली

नीति को (Brink of war policy) समय-समय पर बदलने का एक सुयोग तथा बहाना मिल जाता है। "ऐसा न हो, तो ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे", करते-करते कब टक्कर हो जायगी, इसका कोई ठिकाना नहीं है। भारत तटस्थ तथा ठढे दिमाग से समस्याओ के बारे मे सोचता है, इसलिए संघर्ष रोकने के लिए इस दिशा मे काफी सफलता भी प्राप्त कर रहा है।

हमारे देश के राजनैतिक पक्षवाले भी ऐसा ही महसूस कर रहे है। विनोबाजी जैसे व्यक्ति के पक्ष-भेदो मे दूर रहने के कारण ही आज सब पक्षो के लोग उनकी बात इज्जत से और ध्यान से सुनते है। लोगों को शात और तटस्थ विचार मिलता है। गॉव-गॉव मे इस तरह के पक्षरहित कार्यकर्ता रहेंगे, तो देश की हालत सुधर जायगी।

इसलिए भूदान के कार्यकर्ताओ को चुनाव से अलग रहना चाहिए और राजनैतिक पक्षवालो को भी अपने पक्ष मे खींचने की कोशिश उन्हे नहीं करनी चाहिए।

१७-८-'५६

: ६ :

राजनीति से लोकनीति की ओर

(दादा धर्माधिकारी)

जिस लोक-सत्ता का विकास हम करना चाहते है, उस लोकसत्ता के अन्तिम सिद्धान्त क्या होंगे और उसके चित्र की साधारण रूपरेखा क्या होगी इस पर हम यहाँ विचार करेंगे।

क्रांति के विधायक चरण

सबसे पहले हम यह देखें कि इसके रचनात्मक, विधायक कदम क्या होंगे, भावरूप (Positive) कदम क्या होंगे।

आर्थिक स्वयपूर्णता और आर्थिक विकेन्द्रीकरण के साथ-साथ राजनैतिक विकेन्द्रीकरण का आरम्भ होगा। राजनैतिक इकाई (अर्थात् व्यवहार की सुविधा के लिए बनी हुई इकाई) जैसे कि जिला, आर्थिक इकाई और प्रतिनिधित्व की इकाई (अर्थात् चुनाव के लिए मुकर्रर मतदान-मडल का क्षेत्र) मे कम-से-कम अतर होगा। इन्हें हम यथासभव समव्याप्त (समान क्षेत्रफल मे फैले हुए Co-extensive) बनाने की कोशिश करेंगे। ये छोटे-छोटे क्षेत्रफल इकाइयाँ बन जायेंगी, जिनमे कि वोट खरीदे या छीने नहीं जा सकते, याने जिनमे प्रलोभन भी नहीं है और जिनमे डर भी नहीं है और एक नागरिक दूसरे नागरिक के सामने बराबरी के नाते पेश हो सकता है, वहाँ पर औपचारिक मतदान (Formal Voting) नहीं होगा। जिसे आज हम वोटिंग कहते है, उस तरह की मतगणना और उस तरह के मत-दान की आवश्यकता वैसे क्षेत्र मे नहीं होगी। एक अभिप्रेत मतदान (latent Voting) होता है। सारे समाज का एक मत, एक लोकमत होता है, एक सम्मति होती है। तो लोगों का जो मत है, वही उनका मत वोट होगा। इसमे उम्मीदवारी किसीकी नहीं होगी। और जो कोई होगा, जिसके हाथ मे व्यवस्था

सौंपी जायगी वस्तुनियन्त्रण (Administrations of things) (व्यक्ति नियन्त्रण नहीं) का अधिकार जिसे सौंपा जायगा, उसे सर्व-सम्मति से सौंपा जायगा। उसमे कोई किसीके विरोध मे खड़ा नहीं होगा। यहाँ सर्व-सम्मति का अर्थ इतना ही है कि एकाध कोई शख्स विक्षिप्त हुआ या एकाध आदमी ऐसा हुआ कि जो कहता है कि मैं विरुद्ध हूँ, तो उसको बहुत ज्यादा कीमत नहीं होती है, क्योंकि लोग उसको जान लेते हैं, अर्थात् अक्सर यह सर्वसम्मति से ही होती है।

इस प्रकार का यह साधारण चित्र मैने आप लोगो के सामने रखा है। अब इससे आगे हमको किस-किस दिशा मे कदम उठाने है और वह कदम हम कैसे उठाते चले जायँगे, इसका मै थोड़े मे विवेचन करूँगा।

सबसे पहली बात, पहला कदम, जिसके लिए बहुत हिम्मत की जरूरत नहीं, वह यह है कि आज के चुनाव मे से कैनवासिंग बिल्कुल निकल जानी चाहिए। लोगों को किस तरह से सक्रिय बनाना चाहिए, इसकी बात आपके सामने मै रख रहा हूँ। हमारी इच्छा यह नहीं है कि लोगो का मुँह सत्ता की ओर ही बना रहे। लोगो को हम सत्ताभिमुख नहीं बनाना चाहते। लोगों को अब हम जिम्मेवार बनाना चाहते हैं। लोकशाही लोक-स्वातन्त्र्य मे परिणत होनी चाहिए। नागरिक की स्वतन्त्रता मे—आज भी नागरिक-स्वातन्त्र्य-संघ (Civil liberties union) निकलते हैं—लोकशाही परिणत होनी चाहिए। परन्तु आज क्या है ? आज तो कार्य (Function) उम्मीदवार (Candidate) ही करता है। अर्थात उम्मीदवार ही सक्रिय होता है। मसलन नारायण आता है और कहता है—'दादा ! मै खड़ा हूँ।'

'अच्छी बात है, जो खड़े हो।'

'नहीं, इतनी सी बात नहीं है। आपको वहाँ मत देने, वोट देने के लिए चलना होगा।'

'मै नहीं जानता हूँ कि किसको मत देना चाहिए।'

'आप जानते है, यह तो हमको मालूम है। मगर हम आपके पास किस लिए आये ?'

'किसलिए आये हो, भाई ?'

दुर्जनता की यही परख मानी जाय। सज्जनता और दुर्जनता की और कोई परख नहीं हो सकती। जब यह कहा गया था कि मेरी माँ से अधिक सज्जन स्त्रियाँ दुनिया मे बहुत कम हैं, लेकिन यह किसी अछूत को स्पर्श नहीं करती तो उसकी सज्जनता को वोट देकर मैं क्या करूँगा? उसके हाथ में तो मैं कानून नहीं सौंप सकता। घर मे उसकी पूजा करता हूँ। उसके चरण छूता हूँ। लेकिन मैं अपनी माँ को वोट नहीं दे सकता, क्योंकि वह तो अस्पृश्यता को मानती है।

इसलिए लोक-चारित्र्य जिसमें विकसित हो गया हो, नागरिक-जीवन मे वही सज्जन है। लोक-चारित्र्य की मैंने तीन कसौटियाँ बतायी हैं: १. जिस आदमी मे अराजकता की याने कानून का दुरुपयोग करने की भावना न हो। कानून से बचने की भावना भी अराजकता की भावना है। २ जिसमें अधिकार का दुरुपयोग करने की भावना न हो। ३ भ्रष्ट होने का लालच जिसके मन में न हो। ऐसा आदमी अगर पक्षनिष्ठ नहीं है और दल उसे अपने में शामिल नहीं कर सकते, तो ऐसे आदमी के लिए जगह खाली छोड़ देनी चाहिए। हर पार्टी इतनी मर्यादा मान ले। हर क्षेत्र मे ऐसे मनुष्य तो होते ही हैं, अतः उनके लिए सीट खाली छोड़ दें। हम अपने दल मे इनको नहीं ले सकते, आप भी उन्हें अपने दल म नहीं ले पाते हैं, तो कोई बात नहीं। हम उसके लिए अमुक जगह खाली छोड़ देंगे, यह हरएक पक्ष को समझ लेना चाहिए। इसे मै हर पक्ष का, अपने पक्ष से ऊपर उठना कहता हूँ।

ये असफलताएँ भी आगे ले जायँगी

अभी किसीने यह करके देखा नहीं है। इसलिए लोग कहेंगे कि इस तरह से तो बात चल ही नहीं सकती, जैसा कि लोग कहते है कि व्यापार झूठ के बिना चल ही नहीं सकता और राज-काज कुशलतापूर्वक झूठ बोले बिना (डिप्लोमेसी के बिना) चल ही नहीं सकता। इस तरह लोगों ने मत बना लिये हैं, बगैर अनुभव के। मै कहता हूँ कि यह प्रयोग तो कीजिये और अगर इस प्रयोग म असफलता आयेगी, तो भी लोक-सत्ता का एक कदम आगे बढ़ेगा। सही दिशा मे, सच्चे रास्ते पर जो असफलता आती है, उससे भी आगे कदम बढ़ता चला

जाता है। 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्'—'गीता'। मैंने गाधी के बारे में एक दफा कहा था कि इसकी असफलताएँ भी स्वराज्य को दूसरों की सफलताओं की अपेक्षा अधिक नजदीक ले जाती हैं। इसलिए इसका मार्ग क्रांतिकारी मार्ग और स्वराज्य का मार्ग हम मानते हैं। तो जैसे गाधी की असफलता हमें आजादी के ज्यादा नजदीक ले जाती है, वैसे ही आप यदि कन्वैसिंग छोड़ दें एव लोगों को पक्ष से ऊपर उठना सिखायें, तो लोकशाही के, लोकसत्ता के ज्यादा नजदीक लोगों को यह कदम ले जायगा। लोगो से मतलब है, अपने उम्मीदवार से।

और तीसरी बात, जो मैं आप लोगों से कहना चाहता हूँ, वह है : "पार्टियाँ उम्मीदवारों से दरख्वास्तें माँगना बन्द कर दें।" मैंने तो यहाँ तक कहा है कि गाँव में ही उम्मीदवारी कोई न करे। पर ऐसा आप नहीं कर सकते, तो कम-से-कम पार्टी में तो उम्मीदवारी न हो। नहीं तो वहाँ क्या हुआ, पिछली दफा दिल्ली में। हम सबसे पूछा गया कि तुम बतलाओ कि तुम दूसरों से कैसे अच्छे हो। तो अब अपने गुण क्या बतलाऊँ? थे ही नहीं मेरे पास कोई। तो, नारायण कैसा बुरा है, इसका कच्चा चिट्ठा मैंने दिल्ली भेज दिया। और नारायण ने क्या किया कि दादा कैसा बुरा है, इसका चिट्ठा दिल्ली भेज दिया। अब दिल्लीवालों के पास क्या है? नारायण की बुराई का एक कैटलॉग और दादा की बुराई का दूसरा कैटलॉग। गुणों के कैटलॉग किसीके पास हैं ही नहीं। देखिये न कैसा दोष-सग्रह वहाँ हुआ। प्रथम दोषविष्करण हुआ और बाद मे दोषों का संग्रह उन्होने कर लिया कि अब हमारी पार्टी में कितने आदमी किस तरह बुरे हैं। इसका काफी अच्छा लेख उनके पास हो गया। उनके गुणों का लेखा हो नहीं सका। क्यों? अपनी ईमानदारी सिद्ध करने के लिए मुझे दूसरे की बेईमानी खोजनी होती है और जब सब एक-दूसरे की बेईमानी खोजते हैं, तो आविष्कार बेईमानी का ही हो जाता है।

—साबरमती के विचार-शिबिर के भाषणों से

: ११ :

लोकनीति के रूप में अहिंसा

(दादा धर्माधिकारी)

गांधीजी और कांग्रेस

जब गांधीजी ने भारत की जनता को निःशस्त्र प्रतिकार के बदले सत्याग्रह की दीक्षा देने की कोशिश की, तब उनकी बात का पूरा-पूरा मतलब हमारे कुछ बड़े-बड़े नेताओं की समझ में भी नहीं आया। करीब-करीब सभी नेताओं ने और कांग्रेस जैसी जनसम्मत संस्था ने भी उनके सिद्धान्त को तात्कालिक नीति के रूप में ही स्वीकार किया। जिस हद तक हमने सत्याग्रह के सिद्धान्त का प्रत्यक्ष आचरण किया, उस हद तक जनता की शक्ति बढ़ी और हमें सफलता मिली। उस समय हमारी यह नीति थी कि केवल राजनीतिक क्षेत्र में जहाँ-जहाँ अंग्रेज सरकार का सामना हमको करना पड़ेगा, वहाँ-वहाँ हम अहिंसा से काम लेंगे। दूसरे सामाजिक अथवा धार्मिक क्षेत्रों में भी हम अहिंसा का पालन करने के लिए अपने को बाध्य नहीं समझते थे। अहिंसा को सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करना और नीति के रूप में स्वीकार करना, इस प्रकार अलग-अलग समझा जाता था। गांधीजी ने भी एक तरह से इस मर्यादा को सम्मति दे दी थी।

तात्कालिक नीति

परन्तु अब स्वतन्त्रता के बाद हमको यह विचार करना चाहिए कि यदि हम व्यावहारिक नीति के रूप में भी अहिंसा को अपनाना चाहें, तो उसका स्वरूप क्या होगा। जवाहरलालजी और दूसरे राजनेता बराबर यह कहते आये हैं कि दुनिया के प्रमुख राष्ट्रों को हथियार छोड़ देना चाहिए और शान्ति की हवा पैदा करनी चाहिए। लेकिन अपनी आन्तरिक समस्याओं को हल करने में कोई भी राष्ट्र केवल शान्तिमय उपायों से काम लेने की सच्चाई के साथ प्रयत्न नहीं कर रहा

है। यदि व्यावहारिक नीति के रूप में अहिंसा को स्वीकार करने का प्रयास आज हो, तो सबसे पहले राष्ट्र का आन्तरिक संयोजन और आन्तरिक समस्याओं के समाधान का प्रयत्न अहिंसा के आधार पर होना चाहिए।

आजादी और कैदखाना

हमसे अक्सर पूछा जाता है कि क्या आप लोगों के हाथ में हुकूमत आने पर आप फौज को बरखास्त कर देंगे? हथियारों से रुखसत ले लेंगे? सिद्धान्तपरायण व्यक्ति नम्रता और निश्चय के साथ जवाब देगा : जी हाँ, लेकिन थोड़ी देर के लिए यदि यह मान भी लिया जाय कि अभी हम दूसरे राष्ट्रों के आक्रमण का सामना अहिंसा से नहीं कर सकते और इसलिए हमें सेना और शस्त्र रखने होंगे, तो भी इतना तो हम निश्चयपूर्वक कह ही सकते हैं कि हम अपने देश के नागरिकों के खिलाफ फौज और हथियारों का उपयोग नहीं करेंगे। इतना पक्का इरादा भी इस देश की कोई सरकार कर पाती है, तो वह जनतंत्र को वास्तविक बनाने में एक बहुत बड़ा कदम आगे बढ़ाती है। आज हम देखते हैं कि देश में गैरफौजी नागरिक शासन जैसी कोई चीज ही नहीं रह गयी है। फुटकर से फुटकर अशान्ति की वारदात के लिए फौज या हथियारबंद पुलिस तलब की जाती है। बुनियादी नागरिक स्वतन्त्रता काफूर हो गयी है। जनता की हिफाजत के लिए उसे कठघरे में मुँह बन्द करके सुरक्षित रखना पड़ता है। सारा राष्ट्र आजादी का कैदखाना बनता जा रहा है। बाहर हम निःशस्त्रीकरण के और शान्ति के जोरदार नारे बुलंद करते हैं और भीतर बगैर हथियारों के और संगीनों के अमन कायम नहीं कर सकते। नीति के रूप में भी यह अहिंसा का परिहास है।

संपत्ति और प्रतिष्ठा का वितरण

इसलिए हमारा निवेदन है कि भारतवर्ष के राजनेता और लोकनेता कम-से-कम आन्तरिक मामले की हद तक तो सेना और शस्त्र का प्रयोग न करने का प्रण कर लें। समाज में जब तक विषमता रहेगी, तब तक प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित, सम्पन्न और विपन्न-वर्ग अवश्य रहेंगे। प्रतिष्ठित और सम्पन्न-वर्ग अपनी स्थिति सँभालने की फिकर में रहेगा। अप्रतिष्ठित और विपन्न-वर्ग अपनी परिस्थिति

बदलने के लिए अधीर हो उठेगा। इसका एक ही उपाय है। सम्पत्ति और प्रतिष्ठा बाँट दी जाय। फलस्वरूप विपत्ति भी अपने-आप बँट जायगी। जब ऐसा होगा, तो कानून का अमल करने के लिए न तो डंडे का सहारा लेना पड़ेगा, न तलवार का। साधारण प्रबन्ध के लिए मुल्की पुलिस और मुल्की अफसर काफी होंगे। शासन जनता के अनुशासन के आधार पर चलेगा, न कि बलप्रयोग के सहारे। मर्यादित अर्थ में भी इसीका नाम जनतन्त्र हो सकता है।

लोकशाही के वेश में तानाशाही

इस वास्तविक जनतन्त्र की तरफ कदम बढ़ाने की कोशिश देश की मौजूदा राजनीतिक पार्टियों में से कोई भी पार्टी नहीं कर रही है। सबको यह भ्रम है कि हुकूमत हाथ में आने पर जादू की छड़ी से हम समाज की शक्ल बदल सकेंगे। शायद लोक-कल्याण की उत्कट अभिलाषा के कारण वे यह भूल गये हैं कि हुकूमत से जितना काम लिया जायगा, उतना ही लोगों मे अनुशासन कम होता चला जायगा। कानून को हमेशा हथियार की ताकत का भरोसा करना पड़ेगा और लोकशाही का कहीं ठौर-ठिकाना नहीं रहेगा। लोकशाही के लिबास में तानाशाही अकड़ के साथ इतराती हुई दिखाई देगी।

शान्ति ही नियम है

कुछ लोगों का खयाल है कि बगैर शस्त्र और दण्ड के भय के आन्तरिक शान्ति रखना भी यदि असम्भव नहीं, तो मुश्किल जरूर होगा। इस सम्बन्ध में इतना ही नम्र निवेदन है कि आज की अशान्त परिस्थिति मे भी शान्ति ही समाज का नियम है और अशान्ति एक आकस्मिक घटना है। अक्सर देखा गया है कि चालीस पचास गाँवों के लिए पुलिस का एक थाना होता है। एक थाने में आठ से दस तक जवान रहते हैं। इन जवानों में से भी दरअसल कितने जवान होते हैं, यह सवाल ही है। फिर भी आम तौर पर देहातों में शान्ति रहती है। मतलब यह है कि नागरिकों के बीच परस्पर सद्भाव और शान्तिप्रियता ही सामाजिक शान्ति का वास्तविक आधार है। उसमें बाधा पहुँचानेवाली जो सामाजिक विषमताएँ हैं,

उनका निराकरण शीघ्रातिशीघ्र करना वास्तविक शान्ति की स्थापना का एकमात्र उपाय है।

राजसत्ता की जगह लोकसत्ता

सत्ता और कानून अपने हाथ में लेने की होड़ में से लोगों में शान्तिप्रियता का विकास कोई नहीं कर सकेगा। सत्ता की होड का स्पष्ट शब्दों में अर्थ है, एक-दूसरे पर राज्य करने की कोशिश। दो आदमी एक-दूसरे के कन्धे पर नहीं बैठ सकते। परन्तु उसमें से एक-दूसरे के लिए अविश्वास और आशंका पैदा हो जाती है। इसलिए हमारी यह निष्ठा है कि जिस मात्रा में फौज और पुलिस के शासन की जगह नागरिक शासन लेता जायगा, उसी मात्रा में राजसत्ता की जगह लोकसत्ता की प्राणप्रतिष्ठा होगी। हमारा प्रयत्न शासन अपने हाथ में लेकर राजदण्ड के द्वारा लोगों में शान्ति और स्वास्थ्य स्थापित करने का नहीं है। अनुभव से हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि लोकसत्ता में कानून जिस हद तक लोकसम्मत होता है, उसी हद तक उसका अमल होता है, केवल दण्ड-शक्ति से लोकतन्त्र में कानून का अमल होता हुआ नहीं पाया गया। आये दिन लोकसत्ता और लोकराज्य को सुरक्षित बनाने के नारे हमारे राजनेता लगाते हैं। इसलिए यहाँ वास्तविक लोकसत्ता की प्राणप्रतिष्ठा का मार्ग नम्रतापूर्वक सूचित किया गया है।

अनिवार्य शर्त

सारांश यह कि अहिंसा का प्रयोग चाहे व्यापक और देश-काल बाधित लोकधर्म के रूप में हो या फिर देश-काल परिस्थिति मर्यादित प्रजानीति के रूप में हो, उसकी सफलता की अनिवार्य शर्त यह है कि उसमें सचाई, लगन और निष्ठा होनी चाहिए। एक पक्ष कहता है कि अहिंसा नीति का प्रयोग पहले आंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में किया जाय और बाद में राष्ट्र के आन्तरिक क्षेत्र में। उसका आशय यह है कि आन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शान्ति स्थापित होने पर आज के समान शस्त्रागारों की और प्रचण्ड सेनाओं की कोई जरूरत नहीं रहेगी। प्रत्येक देश अपनी आन्तरिक शान्ति सँभालने के लिए जितनी आवश्यक होगी, उतनी ही सेना रखेगा।

लोकसत्ता में से लोक-स्वतन्त्रता

परन्तु इस उपाय से हम जनता को शस्त्रशक्ति और दण्डशक्ति से मुक्त नहीं कर सकते। लोकसत्ता का परिपाक लोक-स्वतन्त्रता में होना चाहिए। इस दृष्टि से यदि कोई जनतन्त्रात्मक सरकार देश की आन्तरिक व्यवस्था में और शासन में उत्तरोत्तर शस्त्रबल और दण्डशक्ति का प्रयोग योजनापूर्वक कम करती चली जाय, तो वह सारे समाज को वास्तविक लोक-स्वतन्त्रता की ओर अग्रसर करने का श्रेय लेगी। इस दृष्टि से व्यावहारिक नीति के रूप में अहिंसा में श्रद्धा रखनेवाले विचारकों के लिए विनयपूर्वक ये सुझाव रखे गये हैं।

मद्रास
३१-५-'५४

: १२ :

लोकनिष्ठ राजनीति

(दादा धर्माधिकारी)

उस दिन यूनेस्को का उद्घाटन करते हुए संसार के सुप्रसिद्ध दर्शनशास्त्री और भारत के राष्ट्र-उपाध्यक्ष डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने कहा कि यह जमाना हथियारबंद कायरता का है। कायरता ने अपने हाथ में हथियार इसलिए रखे हैं कि वह दूसरों के हमले से डरती है और हथियार चलाती इसलिए नहीं है कि उसे हिम्मत नहीं होती। जो डर के मारे हथियार चला नहीं पाती, उसीका नाम तो कायरता है। डा० राधाकृष्णन् ने बहुत जोर देकर कहा कि इस कायरता से इन्सान को उबारनेवाली एक ही ताकत है और उस ताकत का नाम है अहिंसा।

हुकूमत की जगह बन्धुत्व

ता० १७ नवम्बर को अमेरिका के संयुक्त राज्य की राज्य-परिषद् में भाषण करते हुए डा० राधाकृष्णन ने कहा कि आज तक दुनिया में जोर-जबरदस्ती से सुधार करने की कोशिश की गयी। अब हम जबरदस्ती की जगह समझाने-बुझाने

की नीति को दाखिल करना चाहते हैं। हुकूमत की राजनीति की जगह बंधुत्व की राजनीति—भाईचारे की सियासत—जारी करना चाहते हैं। अपनी अदम्य निष्ठा घोषित करते हुए डा० राधाकृष्णन् ने कहा कि अगर हम असफल हुए, तो भी वह असफलता थोड़े दिनों की होगी, क्योंकि वस्तुमात्र में अच्छाई की जड़ें गहरी जमी हुई हैं। निष्ठुरता और निर्दयता का अगर संसर्ग लग सकता है, तो सदयता और स्नेह का भी लग सकता है। दोनों समान रूप से संक्रामक हैं। भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलालजी तो आये दिन कहते रहते हैं कि दरबार और हुकूमत की राजनीति का जमाना लद चुका।

इन उद्गारों का महत्त्व ?

संसार के एक प्रमुख दर्शनशास्त्री और एक प्रमुख आंतर्राष्ट्रीय राज्यपुरुष के ये उद्गार क्या उन लोगों के लिए कोई महत्त्व नहीं रखते, जो राज्यसत्ता हस्तगत करने की कोशिश में लगातार लगे हुए हैं। क्या डा० राधाकृष्णन् के और जवाहरलालजी के शब्द बाहर की दुनिया पर अपनी नैतिक धाक जमाने के लिए ही हैं या दरअसल इस देश की राजनीति पर उनका कोई प्रत्यक्ष परिणाम होनेवाला है ?

पार्टीपरस्ती और खुदगर्जी

आनेवाले चुनाव की तरफ देश के बहुत-से छोटे-बड़े राजनैतिक नेताओं की निगाह है। उनमें से कुछ, जो कि पार्टीपरस्त हैं, इस चिंता में हैं कि चुनाव में हमारी पार्टी कैसे जीते। लेकिन पार्टीपरस्त व्यक्ति भी इने-गिने ही होते हैं। ज्यादातर उम्मीदवार खुदगर्ज हैं। उन्हें अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने से मतलब है। इसलिए वे चुनाव में अपनी सफलता का पक्का बंदोबस्त कर लेना चाहते हैं; उसमें किसी तरह के धोखे की गुंजाइश नहीं रहने देना चाहते।

इसका नतीजा

जरा नतीजा देखिये। हमारे एक मित्र बड़े राजनीतिज्ञ हैं। कपट-नीति में सिद्धहस्त हैं। कुछ व्यस्त-से दिखाई दिये। हमने पूछा : आप बात हमसे कर रहे हैं, लेकिन मन कहीं और है। आपका ध्यान बँटा हुआ है। कहने लगे : आपने

ठीक ताड़ लिया। आजकल जीने-मरने के सवाल में फँसा हुआ हूँ। हमने पूछा : आपका मतलब ? उन्होंने जवाब दिया : हमारा चुनाव-क्षेत्र जो निर्धारित हो रहा है। हमने कहा : उसमें झगड़े की बात ही क्या है। उस इलाके की जनता को ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व मिले, यही तो आपको देखना है न। इसके लिए इतनी दौड़धूप और हलकानी की क्या जरूरत ? कहने लगे : इतना ही होता, तो फिर किसीको परेशानी न होती। हमें फिकर इस बात की है कि चुनाव-क्षेत्र हमारे मुआफिक बने, जिससे हम बगैर तक्लीफ के चुने जायँ। हम अपनी मर्जी का नकशा बनाना चाहते हैं। इसलिए इतनी सारी तरद्दुद में पड़े हुए हैं।

शाहंशाह की जगह लोकशाह

यही वह हुकूमत की राजनीति है, जिसका जिक्र डा० राधाकृष्णन् और जवाहरलालजी ने किया है। आज हरएक राजनैतिक व्यक्ति अपने-अपने लिए हुकूमत का एक-एक दायरा बनाने में मशगूल है। हमारे यहाँ पुराने जमाने में सम्राट् और शाहंशाह के बहुत से माण्डलिक तथा सामंत होते थे। अब शाहंशाह नहीं रहा, जमाना लोकशाही का है, इसलिए हरएक को फिकर लोकशाह बनने की है। जवाहरलालजी लोकशाह के तख्त से रुखसत होना चाहते हैं, लेकिन जो दरअसल हुकूमतपरस्त लोग हैं, वे तख्तनशीन बनना चाहते हैं। उनकी लोकशाही का नकशा कुछ और ही है। एक सबसे बड़ा लोकशाह देहली के तख्त पर बैठता है और बाकी के सारे छोटे-छोटे फुटकर लोकशाह अपने लिए सिंहासन बना लेते हैं। लोकशाह के ये माण्डलिक पार्लमेण्ट, असेम्बली, कौंसिल और बोर्डों के सदस्य कहलाते हैं। ये अपने-अपने हल्के की जनता के मुनीम कहलाते हैं। लेकिन अपने को मालिक समझते हैं। इसलिए हरएक को चुनाव-क्षेत्र-गढ छीलकर ठीक करने में इतनी दिलचस्पी होती है।

लोकमान्य और जयप्रकाश बाबू

लोकमान्य तिलक की प्रशंसा में एक बार उनके प्रमुख प्रतिपक्षी माननीय गोपाल कृष्ण गोखले ने कहा था कि यह आदमी पुराने जमाने में या किसी दूसरे देश में पैदा हुआ होता, तो अपने लिए एक राज कायम कर लेता। उन लोकमान्य

से जब किसीने पूछा कि क्या स्वराज्य के बाद आप भारतीय लोकराज्य के अध्यक्ष होंगे, तो उन्होंने कहा कि वहाँ बैठकर मैं क्या करूँगा ? मैं तो किसी कॉलेज में गणित का प्रोफेसर बनूँगा और डिफरेंशियल कॅल्क्युलस् पर किताब लिखूँगा। मेरी बहुत दिनों की तमन्ना है। इसीमें लोकमान्य की लोकमान्यता है। उसका रुख तख्त की तरफ नहीं था। जनता की तरफ था। यहाँ हम देखते हैं कि जय-प्रकाश बाबू सत्ता की राजनीति से मुँह मोड़कर क्रान्ति की लोकनीति के मार्ग पर संकल्पपूर्वक आ गये हैं। जो लोग व्यंग्य-चित्र बनाते हैं, वे अक्सर जयप्रकाश बाबू को एक हाथ में कमंडलु लिये हुए, गले में तुलसी की माला पहने, दूसरे हाथ में संन्यासी का दंड सँभाले हुए कौपीनवंत (खलु भाग्यवतः) के रूप में दिखाते हैं। उनका इशारा यह होता है कि जो कोई सत्तावाद से अलग रहने की कोशिश करेगा, वह व्यवहारविमुख व्यक्ति है, दुनियादारी से अलग होकर बैरागी और फकीर बनना चाहता है। इसका मुख्य कारण यह है कि राजनीतिज्ञ सारे संसार को सत्ता-मूलक और सत्तात्मक ही मानता है। इसलिए लोगों की भलाई करने की मंशा से वह उन पर हुकूमत करने का लाइसेन्स चाहता है। घोड़े से आदमी कहता है : मैं तुझे खूब खिलाऊँगा और हृष्ट-पुष्ट करूँगा। शर्त इतनी ही है कि मुझे तू अपनी पीठ पर तंग कसने दे। मिसाल कुछ अटपटी मालूम होती हैं। लेकिन सत्तावादी राजनीति का मर्म उससे प्रकट हो जाता है। लोकमान्य तिलक की तरह जयप्रकाश बाबू भी लोकनिष्ठ और क्रान्तिकारी राजनीति के मार्ग पर कदम रख रहे हैं।

प्रेरणा का मूलस्रोत क्रान्ति

एक दफा एक मित्र ने जयप्रकाश बाबू से पूछा था कि आपके जीवन की मुख्य प्रेरणा क्या रही है, तो उन्होंने एक शब्द में जवाब दिया : क्रान्ति, क्रान्ति ही मेरे जीवन की प्रेरणा का मूलस्रोत है। मैं धर्म, नीति, सदाचार और सबको उसी कसौटी पर कसता हूँ। पार्टीगर्जी और चुनावखोरी की राजनीति को भी उन्होंने उसी निकष पर परखकर देखा। वे इस नतीजे पर पहुँचे कि इस तरह की राज-नीति लोकनिष्ठ क्रान्ति का साधन हो ही नहीं सकती। कुछ मित्र पोखरे में नहा रहे हैं और जयप्रकाश बाबू सहसा गंगाजी में उतर गये। पोखरे में जो नहा रहे थे, वे

गगा से बहुत नाराज हैं कि उसने अपने सुधातः स्वादीय जल का आकर्षण उन्हें क्यों बतलाया।

विनोबा का मजाक

एक और मित्र ने विनोबा का मजाक किया है। वे कहते हैं कि विनोबा गद्दी नहीं पर तो बैठेंगे, लेकिन राज्यसत्ता अपने कहे मे रखेंगे। विनोबा राज्यसत्ता को क्या भेड़-बकरी समझते हैं, जो कान पकड़कर अपने कहे में रखेंगे। राजसत्ता ऐरावत की नानी है। उसकी गर्दन पर चढकर और अकुश लगाकर उसे काबू मे रखना होता है। हमारे मित्र का आशय यह है कि उस हथिनी पर सवार होने के लिए विनोबा को भी चढा ऊपरी मे शामिल होना चाहिए और अकुश की छीना-झपटी मे हिस्सा लेना चाहिए।

स्तुत्य उपक्रम

विनोबा ने यह दिखा दिया है कि यह क्रान्ति का मार्ग नहीं है। लोकनिष्ठ मनोवृत्ति की आवश्यक्ता है। राजनिष्ठा का अर्थ था—राजा की सामर्थ्य-बुद्धि और कार्यक्षमता मे विश्वास। लोकनिष्ठा का अर्थ है—जनता की सामर्थ्य, जनता के हृदय और जनता के पुरुषार्थ मे विश्वास। उसी लोकनिष्ठ मनोवृत्ति का परिचय विनोबा ने दिया है और जयप्रकाश बाबू दे रहे हैं। डा० राधाकृष्णन् ने जिस भाईचारे की राजनीति का नारा बुलन्द किया है और जवाहरलालजी ने जिसका गुणगान किया, उसको अपने जीवन मे और समाज के जीवन मे चरितार्थ करने का यह स्तुत्य उपक्रम है।

पटना

२१-११-'५४

: १३ :

इन्सान की शान हुकूमत नहीं, आजादी

(दादा धर्माधिकारी)

राजसत्ता या बादशाहत में जो गुण राजा के लिए जरूरी समझे जाते हैं, वे ही गुण लोकसत्ता में नेता के लिए जरूरी समझे जाते हैं। राजा हुकूमत करना चाहता है और अपनी हुकूमत निबाहने के लिए लोगों को राजी रखने की कोशिश करता है। नेता यह कोशिश करता है कि लोगों को समझाये। और, साथ-साथ उनकी रहनुमाई के लिए हुकूमत से वह काम भी लेता है। जो आदमियों को परख सकता है, हर शख्स की खूबियाँ और खासियतें भाँप लेता है और उन्हें उनके मुआफिक काम में लगा सकता है, वह अच्छा नेता माना जाता है। समाज के हर व्यक्ति में कुछ-न-कुछ खास गुण होता है। अलग-अलग ये व्यक्ति और गुण बिलकुल बे-तासीर होते हैं। समाज की कोई भलाई करने की ताकत उनमें नहीं होती। उनको एक सूत्र में पिरोने की सिफत नेता में होती है। वह योजकता कहलाती है। जिसमें ऐसी योजकता हो, उसकी रहनुमाई में चलना सब कबूल करते हैं, उनका सिक्का समाज में चलता है। इसमें करामात उन व्यक्तियों की नहीं होती वरन् उनसे उनकी लियाकत के मुताबिक काम लेनेवाले 'योजक' की, नियन्ता की होती है।

जड़ उपकरण

इस तरह आदमी औजार बन जाता है और 'नेता या नियन्ता' उस औजार से काम लेनेवाला कर्मयोगी बनता है। अच्छा इंजीनियर वह है, जो हरएक पेंच-पुर्जा ठीक जगह बैठाता है। अच्छा कारीगर वह है, जो अपने औजारों से काम लेना जानता है और प्राण उपकरणों से कलाकृति का निर्माण करता है। लेकिन आखिर औजार औजार है और कारीगर कारीगर है। औजार में न तो

शासन की बात जब कही जाती है, तो अक्सर उसकी यह टीका होती है कि यह तो 'मधुयामिनी स्वप्नदर्शन' है, इसमें कोई ठोस व्यवहार की बात नहीं है। इस आक्षेप का कारण यह है कि हम मनुष्य को आनद का विधाता नहीं बनाना चाहते, वरन् उसे हम उपकरणों का दास तथा विपयलपट बनाना चाहते हैं। असल में यह सबसे अधिक अव्यवहार्य और अनर्थकारक प्रवृत्ति है। मनुष्य की आत्मतत्रता को यह समाप्त कर देगी और जब मानव आत्मतत्र या स्वतत्र नहीं रहेगा, तो उसमें सामाजिक-विशेषताओं का विकास भी हरगिज नहीं हो सकेगा। यथार्थ में यह कोई समाज-विमुख अध्यात्मवाद नहीं है। सच तो यह है कि इसके बिना समाज में लोकसत्ता ही चरितार्थ नहीं हो सकती। यत्रवाद और तत्रवाद के पुरोहितों और उपाध्यायों के रूप में यत्रविशारद विशेषज्ञों और इजीनियरों का तथा तत्र-विशारद सयोजकों और मैनेजरों का अधिराज्य कायम होता है। फलत. लोक-सत्ता का लोप हो जाता है।

आर्थिक जीवन में जिस मात्रा में यत्रीकरण होगा, उसी मात्रा में राजनीतिक जीवन में तत्रीकरण होगा। इजीनियरशाही, मैनेजरशाही और नेताशाही के त्रिविध तापों से लोकजीवन सतप्त हो जायगा, इसमें तनिक भी सदेह नहीं। लोकशाही का सूत्र है, 'मै किसीकी हुकूमत जबरदस्ती नहीं मानूँगा।' परन्तु यह उस सूत्र का पूर्वार्ध है। अधूरा सूत्र नीमहकीम से भी खतरनाक होता है। इस सूत्र का उत्त-रार्ध है, 'मै किसी पर हुकूमत नहीं करूँगा।' यही वास्तविक लोकसत्ता है। इसीमें मानव का गौरव है, नागरिक जीवन की सफलता है और इन्सान की शान है।

नागपुर
५-१०-'५६

: १४ :

परिष्कृत लोकशाही और शुद्ध वैज्ञानिक साम्यवाद

(दादा धर्माधिकारी)

पिछले दिनों पालघाट मे कम्युनिस्ट पार्टी की जो प्रदीर्घ परिषद् हुई, उसके बारे मे तरह-तरह की बातें कही गयीं और तरह-तरह के कयास किये गये। किसी-किसीने तो यह भी कह डाला कि अब कम्युनिस्ट पार्टी का तख्ता उलट गया। हरएक आलोचना में आलोचकों के विशिष्ट मतवाद या पक्षवाद का रंग था।

राजनीति म गैरों की छावनी में फूट पैदा हो जाय, तो अपनी छावनी मे खुशियाँ मनायी जाती है। लेकिन सर्वोदय मे गैर किसीको नहीं माना जाता, सभी अपने हैं। जिनकी राय और काम करने के तरीके हमारे साथ मेल नहीं खाते, वे भी गैर नहीं है, हमारे ही है। इसलिए किसी खास पार्टी की ताकत घटने से हमें किसी तरह की खुशी नहीं हो सकती। हाँ, अगर लोकशाही मे से पार्टीबन्दी ही खतम हो जाय, तो अलबत्ता हमे खुशी होगी। पालघाट की परिषद् के नतीजे की तरफ हम इसी दृष्टि से देखते है।

मतवादों का जमाना बीत चुका

आज जिन तरह के पक्षभेद मौजूद है, उनके लिए अब अवसर नहीं रह गया है, यह बात दिन-ब-दिन साफ होती जा रही है। सांप्रदायिक कम्युनिज्म और साम्प्रदायिक समाजवाद के दिन अब बीत गये। एशिया में उपनिवेशवाद के अन्त होने के लक्षण साफ दिखाई दे रहे हैं। यहाँ कम्युनिज्म और समाजवाद, दोनों एक नया रूप ले रहे है। पेकिंग का कम्युनिज्म मास्को के कम्युनिज्म का सगा भाई भले हो, लेकिन दोनों की शक्ल-सूरत मे बहुत बड़ा फर्क है। कॉमिन्फॉर्म खारिज कर दी गयी और मास्को के कम्युनिस्ट प्रवक्ताओं ने 'व्यक्ति-पूजा' की घोर निंदा करते हुए स्टालिन की उपासना पर चोट की। ये सब आसार

इस बात के हैं कि मतवादों का जमाना लद चुका। इंग्लैंड की लोकशाही में राजा की सरकार चलानेवाला एक पक्ष होता था और दूसरा राजा का ही पक्ष सरकार-विरोधी होता था। दोनों पक्ष राजा के ही होते थे। इनमें से एक 'प्रगतिवादी' और दूसरा 'स्थितिवादी' होता था। अमेरिका और फ्रांस की लोकशाही में भी पक्षभेदों का नक्शा इसी नमूने पर बना था। विरोधी पक्ष या लोकपक्ष अक्सर दलित और पिछड़ी हुई मानवता का हिमायती होता था। दोनों के उसूलों और कार्यक्रम में फर्क होता था। लेकिन आज तो सभी पक्ष प्रगतिवादी होने का दावा करते हैं। कोई स्थितिवादी या पुराणमतवादी पक्ष अब नहीं रह गया है।

मौजूदा पार्टियाँ और जनता

पहले कुछ विधानवादी थे और कुछ क्रांतिवादी। क्रांतिवादियों का वैधानिक आंदोलन में विश्वास नहीं होता था। वे सशस्त्र विद्रोह का प्रतिपादन करते थे। आज सशस्त्र विद्रोह अव्यवहार्य ही नहीं, बल्कि अवाञ्छनीय माना जाने लगा है। कम्युनिस्ट पार्टी भी उसे जहाँ तक हो सके, टालना चाहती है। इसलिए इन पक्षों में पहले जो फासला था, वह अब कम हो गया है। डा० लोहिया जैसे विचक्षण विचारक ने यह प्रतिपादन करना शुरू किया है कि सशस्त्र या हिंसक आंदोलन लोकशाही में हो ही नहीं सकता। मतलब यह कि सिद्धान्त, साधन और मूलभूत नीति में वर्तमान राजनीतिक दलों में कोई स्पष्ट दिखाई देनेवाला अन्तर नहीं रह गया है। आज इस देश में कांग्रेस का प्रशंसक करीब-करीब कोई नहीं है, फिर भी चुनावों में वोट कांग्रेस को मिलते हैं। इसकी वजह यह है कि मौजूदा पार्टियों में जनता कोई तमीज नहीं कर पाती।

उधर इंग्लैंड में मास्को-मुद्रांकित कम्युनिज्म के प्रमुख प्रवक्ता क्रुश्चेव ने कहा कि "हम जानते हैं कि आप कम्युनिज्म नहीं चाहते, आप जानते हैं कि हमें पूँजीवाद पसन्द नहीं है। फिर भी हम आपके साथ रहना चाहते हैं और आप हमारे साथ रहना चाहते हैं। यह सिर्फ आपकी और हमारी मनोकामना ही नहीं है। यह वस्तुस्थिति की पुकार है।"

मतलब यह कि पूँजीवाद का 'संपत्तिशास्त्र' और कम्युनिज्म का 'अधिनायक-

वाद' इन दोनो को दूर कर साम्ययोगी लोकसत्ता की तरफ सभी को कदम बढाना होगा। आज के राजनीतिक पक्षभेदों की बुनियादें ही बदलनी होगी। निष्पक्ष लोकसत्ता की दिशा में वह पहला कदम होगा। लोकसत्ता को संपत्ति की सुनहरी बेड़ियों से मुक्त होना पड़ेगा और शस्त्रवाद तथा सत्तावाद की लोहमय चौखट में से सांप्रदायिक साम्यवाद को मुक्त होना पडेगा, तब परिष्कृत लोकशाही और परिशुद्ध वैज्ञानिक साम्यवाद का गठबंधन होगा और उन दोनो का संयुक्त सत्त्व साम्ययोगी समाज के रूप में परिणत होगा।

काशी
१४-५-'५६

[दूसरा भाग]

(चुनाव-प्रस्ताव और उसका स्पष्टीकरण)

: १५ :

सर्व-सेवा-संघ का चुनाव-प्रस्ताव

"सर्व-सेवा-संघ का लक्ष्य अहिंसक समाज-रचना है। उसका यह विश्वास है कि हुकूमत की मार्फत अहिंसक समाज कायम नहीं किया जा सकता। लोकतंत्र का आखिरी आधार लोकसम्मति है, यह तो मानी हुई बात है। उसकी सिद्धि के लिए दंड-निरपेक्ष समाज-व्यवस्था की ओर कदम बढ़ाना आवश्यक है। अतएव सर्व-सेवा-संघ सत्ता-प्राप्ति की राजनीति में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी प्रकार का हिस्सा नहीं ले सकता। जिस पक्ष के हाथ में हुकूमत है या जो पक्ष अपने हाथ में हुकूमत लेना चाहते हैं, उन सबकी तरफ सर्व-सेवा-संघ तटस्थ बुद्धि से देखता है। आज लोकतंत्र 'पक्षनिष्ठ' है। उसको 'लोकनिष्ठ' बनाने के लिए पक्ष-निरपेक्ष और पक्षातीत भूमिका की वह आवश्यकता मानता है। उसे किसी भी एक पक्ष की हार या जीत में कोई विशेष दिलचस्पी नहीं हो सकती। कारण, जाहिर है कि मत-परिवर्तन की प्रक्रिया हार और जीत से परे है। हम किसीकी हार या जीत चाहेंगे, तो दोनों में से किसीका भी हृदय-परिवर्तन करने की पात्रता खो देंगे। इसलिए सर्व-सेवा-संघ न तो चुनावों में स्वयं किसी तरह का हिस्सा ले सकता है और न किसी व्यक्ति को चुनाव के विषय में किसी प्रकार की सलाह देना उपयुक्त ही मानता है।

"लेकिन आज की हालत में सर्वोदय-सिद्धान्तों को माननेवाले कुछ व्यक्ति मतदान के अपने अधिकार का प्रयोग करना चाहेंगे। वे स्वाभाविक ही शान्तिमय साधनों में विश्वास न करनेवाले अथवा सम्प्रदायवादी उम्मीदवारों को अपना वोट देना उचित नहीं मानेंगे। जो व्यक्ति भिन्न-भिन्न राजनीतिक पक्षों के सदस्य हैं, वे

यह तो जानते ही हैं कि नागरिक के लिए वोट देने का कर्तव्य जितना पवित्र माना जाता है, उतना ही विशिष्ट परिस्थिति में वोट न देने का कर्तव्य भी पवित्र है। इसलिए उनका पक्ष गलत आदमियों को उम्मीदवारी के लिए खड़ा करे, तो हरएक लोकनिष्ठ नागरिक का यह कर्तव्य हो जाता है कि पक्ष का सदस्य होते हुए भी, वह उस उम्मीदवार को वोट न दे।"

धर्मपुरी (जिला सेलम)
५-८-'५६

: १६ :

चुनाव-प्रस्ताव का अर्थ

(दादा धर्माधिकारी)

इस प्रस्ताव में दो चीजें बहुत साफ हैं। एक तो यह कि नागरिकों का रुख बदलने की सख्त जरूरत है और दूसरी यह कि जब तक कोई नागरिक एक पार्टी का टीका लगाकर उसीको देवता समझेगा, तब तक वह आदमी का पुजारी नहीं बन सकता। आज हरएक समझता है कि अगर मैं राजा बन जाऊँ, तो सब कुछ दुरुस्त कर दूँगा। आज दुरुस्त इसलिए नहीं कर सकता कि हुकूमत मेरे हाथ में नहीं है, हुकूमत गलत आदमियों के हाथ में है! हुकूमत से मतलब है, दूसरों की मर्जी के खिलाफ उनसे कोई काम करा लेने की ताकत। जिनका हुकूमत में भरोसा है, वे यह मानते हैं कि समझाने-बुझाने से कोई नहीं मानेगा, इसलिए उसको दबाने की ताकत हमारे पास होनी चाहिए। कहना न होगा कि इस तरीके से भाईचारा कायम नहीं हो सकता। अहिंसक समाज से मतलब है, बराबरी के नाते, एक-दूसरे के साथ दिल मिलकर रहनेवाले स्वतंत्र व्यक्तियों का समाज। सभी स्वतंत्र होंगे, कोई किसीकी जिंदगी में दखल नहीं देगा, लेकिन मदद पहुँचाने के लिए सभी हमेशा तैयार रहेंगे। इसलिए इस प्रस्ताव में कहा गया है कि हुकूमत का रास्ता अहिंसक समाज कायम करने का रास्ता नहीं है। चुनाव लड़े जाते हैं,

हुकूमत अपने हाथ में लेने के लिए। साफ है कि जो लोग अहिंसक समाज कायम करना चाहते हैं, वे चुनावों में हिस्सा नहीं ले सकते। ऐसी हालत में वे दूसरों को सलाह भी भला क्या दें ?

इसी सिलसिले में एक बात और भी कह देना जरूरी है। बहुमत का राज्य एक तरह से एक अधी ताकत की हुकूमत है। उसमें अल्पमतवालों की बात सही हो, तो भी उस पर अमल नहीं होता। अब धीरे-धीरे बहुमत की जगह सार्वमत के आधार पर लोकतंत्र चलना चाहिए। इसलिए जो लोग 'लोक-सम्मति' से 'सर्व-सम्मति' समझते हैं, वे आज के चुनावों में हिस्सा नहीं ले सकते।

प्रस्ताव के दूसरे हिस्से में उन लोगों के लिए कुछ संकेत है, जो सर्वोदय-विचार को तो मानते हैं, लेकिन फिर भी आज की हालत में वोट देना अपना कार्य समझते है, क्योंकि सर्वोदय-निष्ठ विचारकों में भी कुछ ऐसे महान् विचारक हैं, जो समझते है कि हुकूमत तो किसी-न-किसी शकल में, हर सूरत में रहेगी। ऐसा माननेवाले जो साधारण मतदाता हैं, उनसे यह उम्मीद की गयी है कि वोट देने में वे साधनशुद्धि और व्यापक मानवता का ध्यान रखेंगे। जो लोग सम्प्रदाय, जाति इत्यादि भेदों में विश्वास करते है और समाज परिवर्तन के लिए अहिंसक साधनों से काम लेने का आग्रह नहीं रखते, उनके हाथ में हुकूमत जाना तो सभी तरह से खतरनाक है। सर्वोदय को माननेवाले इस तरह की किसी पार्टी के सदस्य तो हरगिज नहीं होंगे, लेकिन कोई व्यक्ति दूसरी तरह से चाहे जितना नेक और पाक क्यों न हो, अगर वह किसी सम्प्रदाय या जाति को ऊँच या नीच मानता हो, तो उसे हुकूमत के लिए नाकाबिल मानना चाहिए।

एक आखिरी संकेत यह है कि पार्टी की जीत से या पार्टी की शान से जनता का हित श्रेष्ठ माना जाना चाहिए। अक्सर ऐसा होता है कि चुनाव में जीतने के लिए पार्टियाँ ऐसे उम्मीदवार खड़े कर देती हैं, जिनकी इलेक्शन का खर्च करने की हैसियत हो और जो काफी तादाद में वोट जुटा सकें। उम्मीदवारों के सामाजिक गुण-दोषों का विचार पार्टियाँ नहीं करतीं। ऐसी हालत में अगर पार्टी का कोई सदस्य अपनी पार्टी से ऊपर उठकर उस उम्मीदवार को वोट देने से इनकार करता है, तो वह 'पक्ष-तंत्र' की तरफ से 'लोकतंत्र' की तरफ मुड़ता है। बात जरा-सी है,

लेकिन वह नागरिक का याने मतदाता का रुख बदल देती है। उसे 'पक्षनिष्ठ' से याने 'पार्टी-परस्त' से 'लोकनिष्ठ' याने 'खल्क-परस्त' बना देती है।

काशी,
१६-८-'५६

: १७ :

चुनाव-प्रस्ताव का विश्लेषण

(धीरेन्द्र मजूमदार)

अखिल भारत-सर्व-सेवा-संघ के चुनाव-प्रस्ताव ने देश की हरएक श्रेणी के लोगों की दृष्टि को आकर्षित किया है। यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि वर्तमान सामाजिक जीवन में चुनाव का प्रश्न आज आम जनता को जितना आकर्षित करता है, उतना शायद ही कोई दूसरा प्रश्न करता हो। इसकी चर्चा लोगों ने अखबारों में भी की है। चर्चाओं की दिशा विभिन्न प्रकार की है। कुछ पक्षों के लोग इससे असन्तुष्ट हैं, क्योंकि वे मानते थे कि यद्यपि चुनाव में हम सक्रिय रूप से भाग नहीं लेंगे, फिर भी आज की चुनाव-पद्धति को सर्व-सेवा-संघ का कम-से-कम मूक समर्थन तो अवश्य प्राप्त है। कुछ लोग ऐसा भी समझते थे कि आखिर संघ के लोग सार्वजनिक जीवन में हमारे साथी रहे हैं और रहेंगे भी, अतः कम-से-कम हमारे साथ उनकी सहानुभूति अवश्य रहेगी। कुछ पक्षों के कुछ लोग यह भी समझते थे कि कम-से-कम कुछ क्षेत्रों में तो संघ के कार्यकर्ताओं की सहानुभूति हमारे साथ रहेगी।

लेकिन सर्व-सेवा-संघ के प्रस्ताव ने उनकी इन सारी अपेक्षाओं पर पानी फिर गया, अतः उनका असन्तोष स्वाभाविक ही है। कुछ थोड़े राजनीतिक विचारकों ने, जो विभिन्न पक्षों में हैं, प्रस्ताव का स्वागत भी किया है। वर्तमान चुनाव-पद्धति और लोकशाही का मौजूदा तरीका भारत की अपनी परिस्थितियों के बीच अच्छी तरह सफल होगा, इसमें उन्हें सन्देह हो रहा है। अतः सर्व-सेवा-संघ का कदम पूर्ण समाधान की दिशा में भले ही उनको न लगता हो, लीक छोड़कर नये

मार्ग की खोज की चेष्टा इसमें है, ऐसा वे मानते हैं, इसलिए उन्हें इस प्रस्ताव से सन्तोष है। विभिन्न पक्षों के कुछ लोगों को इसलिए भी सन्तोष है कि उनके सामने हमारी स्थिति अनिश्चित थी। वे इस बात से सशंकित थे कि न मालूम ये लोग किस ओर झुकेंगे। अब इस प्रस्ताव के कारण उनके सामने स्थिति स्पष्ट हो गयी, अतः वे सन्तुष्ट हैं। सर्वोदय के विभिन्न क्षेत्र के कार्यकर्ताओं को भी सन्तोष है, क्योंकि उनके सामने यह जटिल सवाल उपस्थित था कि तटस्थ रहने के कारण जनता के सवालों का क्या जवाब दिया जाय ? उनके सामने अब इसकी दृष्टि और विचार स्पष्ट हो गये हैं।

सर्व-सेवा-संघ का लक्ष्य

स्पष्ट है कि सर्व-सेवा-संघ शासनमुक्त अहिंसक समाज कायम करना चाहता है। सर्वोदय की दृष्टि साध्य के अनुरूप ही साधन इस्तेमाल करने की है। इसलिए सर्व-सेवा-संघ अपने तमाम लक्ष्यों की पूर्ति राज्य की मार्फत नहीं, बल्कि स्वतन्त्र जनशक्ति के अधिष्ठान से करना चाहता है। ऐसी हालत में राज्य के निर्माण में सर्व-सेवा-संघ का हिस्सा नहीं हो सकता। जिस संस्था का राज्य विघटन का लक्ष्य है, उसी संस्था का, इस लक्ष्य-पूर्ति के विपरीत राज्य के संघटन का कार्यक्रम नहीं हो सकता। इसलिए चुनाव में सर्व-सेवा-संघ द्वारा हिस्सा न लेना पूर्ण स्वाभाविक है। ऊपर-ऊपर से विचार करनेवाले कुछ मित्र यह प्रश्न कर सकते हैं कि हमारे भाग न लेने से क्या चुनाव नहीं होंगे ? वे अवश्य होंगे। जनता में हमारे इस विचार को माननेवाले लोग अत्यन्त अल्प संख्या में हैं, यह सही है। फिर भी जिस पद्धति को हम मानव-समाज के लिए अहितकर मानते हैं, उससे अलग रहना ही हमारा कर्तव्य हो जाता है।

दूसरा सवाल यह किया जाता है कि "आखिर पूर्ण शासन-मुक्ति भी क्या मनुष्य की पकड़ में कभी आ सकेगी ? शायद नहीं आ सकेगी। तो फिर शासन मुक्ति का व्यावहारिक रूप शासन-निरपेक्षता ही होगा। वैसी हालत में कुछ-न-कुछ अवशिष्ट शासन रह ही जायगा। फिर चुनाव से हम बच ही कैसे सकते हैं ?" ये बातें भी सही हैं। हम चुनाव से शायद बच नहीं सकेंगे, लेकिन सवाल यह है कि उसकी पद्धति क्या होगी ?

आज की पंचायत का अर्थ

शासन-मुक्ति के लक्ष्य पर पहुँचने के लिए पहला कदम शासन-विभाजन ही हो सकता है। इसीलिए हम ग्राम-राज्य की बात करते हैं। शासन-विभाजन से मतलब आज की स्थापित पचायती प्रथा से नहीं है, क्योंकि आज राज्य द्वारा जो पञ्चायतें कायम की जा रही हैं, वे शासन-विभाजन की प्रक्रियाएँ हरगिज नहीं हैं, बल्कि वे शासन-विकास की ही प्रक्रियाएँ हैं। केन्द्र अपनी जिम्मेदारी पूरी करने के लिए सीधे दूर-दूर देहातों में पहुँच नहीं सकता। अतः वह स्थानीय पचायतों द्वारा अपनी अनेक एजेन्सियों की स्थापना कर रहा है। इस तरह वे शासन की एजेन्सियाँ हैं !

जरूरत किस बात की है ?

शासन-विभाजन का मतलब होता है, कर्तृत्व-विभाजन। जाहिर है कि प्रचलित पचायत-पद्धति से इस लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो सकती। विभाजित शासन अर्थात् ग्राम-राज का मतलब ही यह है कि समाज की पूर्ण जिम्मेदारी और कर्तृत्व ग्राम-इकाई पर निर्भर है और गाँव के लोग अपनी मर्यादित शक्ति के कारण इनमें से कुछ जिम्मेदारियाँ प्रत्यक्ष रूप से यदि न उठा सकें, तो उस जिम्मेदारी के लिए वे प्रान्तीय तथा केंद्रीय एजेंसियाँ स्थापित करें।

अगर आज इस प्रकार का ग्रामराज्य कायम नहीं है, तो कम-से कम इतना तो हो ही सकता है कि आज के केन्द्रीय ढाँचे में प्रत्यक्ष चुनाव के स्थान पर अप्रत्यक्ष चुनाव की पद्धति ही जारी की जाय !

दूसरी बात यह है कि वर्तमान पक्षनिष्ठ-राजनीति प्रतिद्वन्द्विता के आधार पर समाज में भेद-नीति की सृष्टि करती है। अगर विश्व में शांति स्थापित करनी है, तो प्रतिद्वन्द्वी समाज में नियन्त्रण-कारी "राजनीति" के स्थान पर सहयोगी समाज की व्यवस्था के लिए "लोकनीति" कायम करने की आवश्यकता है। पक्षनिष्ठ चुनाव-पद्धति से बहुमत द्वारा लोकशाही की स्थापना नहीं हो सकती। उसमें अनिवार्य रूप से गणशाही ही बनी रहेगी, क्योंकि वैसी स्थिति में हमेशा बहुमत का राज्य अल्पमत पर कायम रहेगा। लोकनीति का मतलब है, जनसमूह द्वारा प्रति-

पादित नीति। उसको चलानेवाले सर्वसम्मति से ही चुने जा सकते हैं। अन्यथा चुना हुआ व्यक्ति जनसमूह का प्रतिनिधि न होकर बहुमत का प्रतिनिधि होगा। फलस्वरूप समाज में राजा और प्रजा के रूप में दो श्रेणियाँ रह ही जायँगी, क्योंकि ऐसी परिस्थिति में अल्पमतवाला पक्ष प्रजा ही रहेगी।

यही कारण है कि सर्व-सेवा-संघ पक्षनिष्ठ राजनीति के स्थान पर 'पक्ष-रहित लोकनीति' तथा बहुमत-आधारित चुनाव-पद्धति के स्थान पर सर्व-सम्मत चुनाव-पद्धति कायम करने की बात करता है। यानी सर्व-सेवा-संघ की राय से वर्तमान समाज-व्यवस्था एवं शासन-प्रणाली में भी अप्रत्यक्ष तथा सर्वसम्मत चुनाव-प्रथा आज की परिस्थिति में भी जारी करनी चाहिए। ऐसा हो जाने से कम-से-कम इस देश में वास्तविक लोकशाही की स्थापना हो सकेगी और शासन विभाजन की प्रगति भी साथ-साथ एवं शीघ्र हो पायेगी।

भूदान-यज्ञ (साप्ताहिक)
५-१०-'५६

: १८ :

पॉवर-पॉलिटिक्स और स्ट्रेंग्थ पॉलिटिक्स

(विनोबा)

लोगों की ताकत हम बढ़ानी है, एक मनोभावना बनानी है। इसलिए जो लोग इसमें काम करेंगे, उनको इलेक्शन में ज्यादा दिलचस्पी नहीं होनी चाहिए। कांग्रेस की पार्टी सत्ताधारी है। दूसरी पार्टियाँ सत्ताधारी नहीं हैं, लेकिन वे सत्ता चाहती हैं, इसलिए वे सत्ता की अभिलाषी हैं। दोनों सत्ता के इर्द-गिर्द नाचती हैं। परन्तु हमारा नृत्य इस तरह चलेगा, तो भूदान नहीं होगा। कुछ लोग हमसे कहते हैं कि आपके भूदान में इतने लोग लगे हैं, लेकिन उन सबकी परीक्षा १९५७ के इलेक्शन में होगी। इलेक्शन में जाना पाप नहीं है। यह काम बुरा भी नहीं है। परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि जो लोग भूदान में से उसमें जायेंगे,

वे जनशक्ति का पहलू खोयेंगे। समझना चाहिए कि 'पॉवर-पॉलिटिक्स' एक बात है और 'स्ट्रेंग्थ-पॉलिटिक्स' दूसरी बात है। ये लोग पॉवर-पॉलिटिक्स' के पीछे जाते हैं, लेकिन पॉवर (सत्ता) में स्ट्रेंग्थ (शक्ति) का क्षय होता है। स्ट्रेंग्थ निष्काम-सेवा से बढ़ती है। उत्तम-से-उत्तम सेवक, जो पॉवर में गये हैं, उनकी शक्ति बढ़ी है या घटी है? शास्त्र में लिखा है, कोई तपस्या करता है और बाद में इन्द्र-पद प्राप्त होता है, तो उसी दिन से क्षय की शुरुआत होती है। "क्षीणे पुण्ये मृत्युलोके विशन्ति' पुण्य का क्षय होता है। तो, उसको लात मारकर मृत्यु-लोक में भेजा जाता है। इसलिए जनता की शक्ति निर्माण करेंगे, तो वास्तव में वह स्ट्रेंग्थ-पॉलिटिक्स होगा। लोग कहते हैं कि बाबा पॉलिटिक्स में पड़ता नहीं है और उसने जे० पी० को भी पॉलिटिक्स से भूदान के काम में लगाया है। लेकिन इस तरह बोलनेवाले लोग सोचते नहीं कि जे० पी० कोई लड़का नहीं है। सब प्रकार के शास्त्र का अध्ययन किया हुआ वह क्रान्तिकारी और ज्ञानी है। रशिया का इतिहास और चीन का इतिहास उसने देख लिया है और लोगों की ताकत नहीं बनती है, तो काम नहीं बनता है, यह वह पहचानता है। इंग्लैंड, रशिया, अमेरिका आदि सब देश प्रजा का कल्याण कर लेंगे, परन्तु वहाँ जन-शक्ति निर्माण नहीं होगी और भूदान-यज्ञ जनशक्ति बढ़ाने का आन्दोलन है, इसलिए इसमें पॉलिटिक्स का अभाव नहीं है, परन्तु यह आन्दोलन आज के पॉलिटिक्स का खंडन करनेवाला है।

प्रश्न :—लोकनीति स्थापित करने की बात हम करते हैं, परन्तु उसका विरोध खड़ा करने की वृत्ति भी यहाँ-वहाँ दिखाई देती है। उस हालत में हम क्या करें?

उत्तर :—लोकनीति ऐसी व्यापक नीति है कि उसका जो विरोध करेगा, वह गिरेगा, उसकी क्षति होगी। समुद्र का विरोध नदी नहीं करेगी। जो नदी ऐसा करेगी, वह डूब जायगी। इसलिए यह डर रखने की जरूरत नहीं है कि जो काम हम करेंगे, उसके विरुद्ध काम दूसरे लोग खड़ा करेंगे। लोकनीति की स्थापना करना निगेटिव (नकारात्मक) नहीं। उसका मतलब यह नहीं है कि आज की राजनीति का खंडन करना और उसका दोष दिखाना। यह समझना चाहिए कि आज की राजनीति यद्यपि 'लोकनीति' नहीं है, फिर भी वह 'लोकमान्य' है। इस

वास्ते जब लोग बदलेंगे, तभी वह नीति बदलेगी। इस वास्ते हम राजनीति का केवल दोष ही दिखाते चले जायँगे, तो हमारी शक्ति हम व्यर्थ खर्च करेंगे।

भूदान-यज्ञ (साप्ताहिक)
२७-७-'५६

: १६ :

चुनाव-प्रस्ताव का दर्शन

(विनोबा)

सर्व-सेवा-संघ का चुनाव-प्रस्ताव यहाँ उपस्थित है। उस पर आप सोचें। उससे विचार-विकास होगा। कोई अगर उसे नहीं पसंद करता है, तो दबाव से उसे वह न माने। हम शासन को नहीं, शिक्षण को मानते हैं। सर्व-सेवा-संघ और सर्वोदय-समाज आज्ञा करनेवाली संस्था भी नहीं है। जहाँ शासन होता है, वहाँ अनुशासन-भंग की कार्यवाही भी होती है। इस समाज में हम वह नहीं करते हैं। चर्चा करते हैं, विचार-स्वातंत्र्य रखते हैं। जहाँ विचार की आजादी न हो, दूसरे प्रकार की आजादी हो, उसकी बहुत ज्यादा कीमत हम नहीं मानते। इस प्रस्ताव से हम कोई आदेश नहीं दे रहे हैं। हरएक को अपना-अपना दिमाग है और उसमें बरतने की उसे आजादी है। सर्वोदय विचार में माननेवाला अपने विचारों का प्रकाशन देश के सामने करता है।

उन्नीसवीं सदी में इंग्लैंड में एक तत्त्वज्ञान निर्माण हुआ। वह था—Greatest good of the greatest number यानी सबका भला नहीं, "अधिक-से-अधिक संख्या का अधिक-से-अधिक भला।" तो अधिक संख्या की भलाई के लिए अगर किसीका खून करना पड़ा, किसीकी आहुति देनी पड़ी, तो वह दे सकते हैं। सर्वोदय इस तत्त्वज्ञान से बिलकुल ही भिन्न विचार रखता है, यह 'सर्व' शब्द ही प्रकट करेगा। किसी भी मनुष्य का सच्चा हित किसी दूसरे मनुष्य के सच्चे हित के विरुद्ध हो नहीं सकता। मेरा आरोग्य, मेरी विद्या, मेरी क्षमा आपके आरोग्य, आपकी विद्या, आपकी क्षमा से विरुद्ध हो नहीं सकती।

मेरी हृदयशुद्धि आपकी हृदयशुद्धि के विरुद्ध नहीं हो सकती। लेकिन गलती से मै चोरी करने मे अगर अपना भला मानूँ, तो उससे विरोध पैदा होगा। शेर समझता है कि खरगोश को खाने मे उसका भला है और खरगोश समझता है कि शेर के पंजे से छूटने मे उसका भला है, इसलिए दोनों का विरोध आता है। परंतु 'मानव-समाज' मे कभी भी एक व्यक्ति के हित के विरुद्ध दूसरे का हित नहीं हो सकता। इसलिए हमें सबका हित साधना चाहिए। इसमें 'अधिक-से-अधिक संख्या' और 'कम-से-कम संख्या' का खयाल ही नहीं हो सकता।

सत्य-दर्शन बनाम बहुसंख्या

केवल सत्य-दर्शन का ही खयाल हो, तो हम यह नहीं कह सकते कि ज्यादा संख्यावालो को सत्य-दर्शन होता है। सत्य-दर्शन का, अधिक और कम संख्या से कोई संबंध नहीं है। एक मनुष्य भी अपने सत्य-दर्शन के लिए, सारे समाज के विरोध के सामने खड़ा हो सकता है, उसे खडा होने का हक है। इसीको सत्याग्रह का हक कहते हैं। सत्याग्रह का न सिर्फ हक होता है, बल्कि सत्याग्रह का कर्तव्य भी होता है। किसीके सत्य-दर्शन को बहुसंख्या से या और किसीसे दबाया नहीं जा सकता। मान लीजिये कि शिक्षक ने गणित का एक सवाल पूछा और पंद्रह विद्यार्थियो ने गलत जवाब दिया, दो ही विद्यार्थियो ने सही दिया, तो क्या उस सवाल का निर्णय बहुसंख्या से होगा? इसलिए सत्य-दर्शन का बहुसंख्या के साथ कोई संबंध नहीं है। उसी तरह, जहाँ सबकी भलाई की बात है, वहाँ किसीके भी हित की हानि नहीं होनी चाहिए, सबका हित सधना चाहिए। यही सर्वोदय-विचार है।

"अधिक-से-अधिक लोगों का अधिक-से-अधिक भला" वाला विचार एक असद्विचार है। उसके परिणामस्वरूप दुनिया मे अनेक प्रकार के राजनैतिक झमेले पैदा होते है। आज दुनिया के हर देश मे बहुसंख्या विरुद्ध अल्पसंख्या का सवाल खड़ा है। पहले जो भेद थे, वे तो कायम ही है। परंतु उसमे और एक भेद का इजाफा हो गया है। परिणामस्वरूप दुनिया मे शांति की स्थापना नहीं हो रही है, शस्त्रास्त्र बढ रहे हैं। इसलिए सर्वोदय-विचार मानता है कि शासन-मुक्ति की तरफ ही जाना होगा।

हम जानते है कि यह चीज एकदम से होनेवाली नहीं है। अत. उसके लिए पहले शासन-विभाजन करना होगा। गॉव-गॉव के हाथ में सत्ता आनी चाहिए। गॉव की ग्रामसभा 'सबकी राय' से चुनी जायगी, 'बहुसख्या' से नहीं। ग्राम को अपना कुल कारोबार चलाने का हक होगा। गाँववालों की इच्छा के विरुद्ध उन पर कोई माल लादा नहीं जायेगा। जहाँ पर दस पन्द्रह गाँवों के सयोजन का सवाल आयेगा, वहॉ ऊपरवाली सस्था काम करेगी। ऊपरवाली सस्था का चुनाव ग्रामसभा की तरफ से होगा, हर व्यक्ति की तरफ से नहीं होगा। इस तरह अप्रत्यक्ष चुनाव होंगे। ऊपर की सस्था के हाथ म फौजी शक्ति नहीं रहेगी, नैतिक शक्ति रहेगी। अगर उनके हाथ मे भौतिक शक्ति रही, जैसी कि आज दुनिया के ४ ५ लोगों के हाथ मे दुनिया को आग लगाने की ताकत है, तो खतरा हमेशा के लिए बना रहेगा। इसलिए इसमें से छुटकारा पाने का प्रयत्न करना होगा। कम्युनिस्ट भी राज्य के विलयन की बात करते है, लेकिन वे कहते है कि सत्ता आखीर मे क्षीण होगी—State will wither away, लेकिन आज तो dictatorship of the Proletariat (सर्वहारा की तानाशाही) होगी और केन्द्र के हाथ मे अधिक-से-अधिक सत्ता रहेगी। याने आखिरी उद्देश्य के बिल्कुल उल्टा काम आज करना होगा। इस तरह से कभी भी सत्ता क्षीण नहीं हो सकती है। सत्ता क्षीण करनी है, तो उसका आरम्भ आज से ही करना होगा। अत आज ऐसी जमात निर्माण होनी चाहिए, जो सर्वोदय के खयाल से ही सोचे, अपने विचार जनता के सामने रखे, जनता के साथ अच्छे काम मे निरन्तर सहयोग करे और अगर जनता, सरकार या कोई भी गलत काम कर रहा हो, तो उस पर अपना नैतिक असर डालकर उन्हे रुकवाये। सारा समाज दूध के जैसा है। उसमे यह थोड़ा दही डाला जायगा और फिर कुल दूध का दही बनेगा।

जब हम कहते है कि आज जिस ढग से शासन आदि चलता है, वह उत्तम ढग नहीं है, तो सामनेवाले भी कहते है कि 'वह उत्तम ढग नहीं है, लेकिन इससे बेहतर ढग हमे सूझ नहीं रहा है। अभी हमारी जितनी अक्ल चलती है, उसके मुताबिक यही ठीक है।' प० नेहरू ने भी अभी कहा कि direct election

(प्रत्यक्ष चुनाव) ठीक नहीं है। यह विचार सबको पसन्द आने में और उस पर अमल करने में कुछ देर होगी, परन्तु केवल चुनाव के 'प्रकार' पर ही हमारा आक्षेप नहीं है, मूलभूत नीति-विचार पर ही है। हम चाहते हैं कि सबका भला हो, न कि अधिक से अधिक लोगों का ही अधिक-से-अधिक भला !

आज के समाज में जिधर देखो, उधर भेद ही दिखाई देते हैं। प्रान्त के मुख्य मन्त्री-पद के लिए तक झगड़ा चलता है ! इससे कितनी कुभावना फैलती है ? होते हैं वे एक ही पार्टी के व्यक्ति; पर लोकशाही का नियम है न कि स्पर्धा होनी चाहिए और बहुसंख्या में निर्णय होना चाहिए ! एक दफा सोलापुर में एक केस में न्यायाधीशों में से बहुसंख्यों ने कहा कि यह खून का केस है, इसलिए गुनहगार को फाँसी देनी चाहिए। और फाँसी दे दी गयी ! उन लोगों को कम-से-कम इतना क्यों नहीं सूझा कि जब कि न्यायाधीशों में से ही कुछ-कुछ लोग उस निर्णय के खिलाफ थे, तो उसका लाभ गुनहगार को मिलना ही चाहिए था ! इसी प्रकार का एक केस अमेरिका में बना, जहाँ बहुसंख्या की राय से फाँसी दी गयी ! इस तरह उन्होंने majority (बहुसंख्या) को देवता माना है ! हिन्दुस्तान में कुछ कम देवता नहीं हैं। फिर उसमें और एक देवता क्यों बढ़ाया जाय ? यह सारा झगड़ा, एक तत्त्व का झगड़ा है। आखिर यह विचार दुनिया को कबूल करना पड़ेगा, क्योंकि यह एक सत्य-विचार है।

गांधीनगर, तिरुपुर
१८-१०-'५६

: २० :

इलेक्शन : लड़ाई नहीं, खेल !

(विनोबा)

इन दिनों बहुत लोगों को हर बात में "फाइट" करने की आदत पड़ गयी है। अगले साल, १९५७ में चुनाव की "फाइट" होगी! हमने कई बार कहा कि चुनाव लड़ते क्यों हो, वह तो खेलना चाहिए, जैसे कुश्ती खेलते है! पर उसमें दो मनुष्यों के बिना कुश्ती होती नहीं। इसलिए कांग्रेसवालों के लिए मल्ल ही नहीं दीखता है! "अपोजिट" पार्टी के बिना लोकशाही का कारोबार अच्छा नहीं चलता, ऐसा सिद्धात हमने बनाया! अत. अगर अपोजिशन पार्टी हम चाहते है, तो चुनाव खेलना चाहिए, वह लड़ना नहीं चाहिए। परिणामत. चुनाव में जो बुराइयाँ होती हैं, वे तो नहीं होंगी! जिसने चुनाव जीत लिया, उसको राज्य-कारोबार चलाने का इनाम मिल गया और जो चुनाव में हार गया, उसको सार्वजनिक सेवा का नारियल मिल गया, जैसे कुश्ती में हारनेवाले को भी नारियल मिलता है! दोनों को दोनों बाजू से लाभ है। जो जीतेगा, वह राज्य-कारोबार चलायेगा, जो हारेगा, वह सीधी लोकसेवा करेगा।

जो सच्चा सेवक है, उसकी दोनों बाजू जीत होती है। अत. इलेक्शन में हमको खेल के समान वृत्ति रखनी चाहिए। जैसे, दोनों भाई है, एक ही आश्रम में या एक ही घर में प्रेम से मिल-जुलकर काम करते है, एकत्र खाते पीते है और अपनी कमाई दोनों बाँट लेते है। एक अगर सोशलिस्ट पार्टी का है, तो दूसरा कांग्रेस-पार्टी का, फिर भी एक-दूसरे पर दोनों अत्यन्त प्रेम करते हैं। इलेक्शन में जब दोनों जायेंगे, तो एक कहेगा . "इसको वोट मत दीजिये, क्योंकि वह अच्छा कारोबार नहीं चलायेगा, उसकी कल्पना अच्छी नहीं है" आदि। दूसरा भी इसी तरह लोगों को कहेगा . "वह अच्छी लोकशाही नहीं चलायेगा, क्योंकि उसका विचार ठीक नहीं है" आदि। इस तरह एक-दूसरे के विरुद्ध लोगों

में विरुद्ध विचार-प्रचार करेंगे। कोई भी हारेगा और कोई भी जीतेगा, लेकिन घर पर आकर दोनों एकत्र खायेंगे, पीयेंगे और प्रेम से रहेंगे। इस तरह के आनन्द में और विनोद में इलेक्शन होना चाहिए। प्राचीन काल में हिन्दुस्तान में बाप हिन्दू होता था, तो उसका एक बेटा बौद्ध होता था, एक जैन, पर एक ही परिवार में प्रेम से वे रहते थे और अपने धर्म का विश्वास अलग-अलग रूप से रखते थे। आज भी कहीं-कहीं एक ही घर में कोई कांग्रेसी, तो कोई समाजवादी, तो कोई साम्यवादी होता ही है। तो, जैसे धर्म-विश्वास अलग है, इसलिए प्रेम तोड़ना चाहिए, ऐसी कोई जरूरत नहीं है, वैसे ही पोलिटिकल थियेरी अलग हो गयी, तो प्रेम तोड़ने की जरूरत नहीं। इसलिए इलेक्शन में लड़ने की वृत्ति—"टू फाइट इलेक्शन"—यह शब्द बहुत बुरा है। यह शब्द अंग्रेजी भाषा से आया है। अपने देश में तो इलेक्शन खेल ही होना चाहिए।

आपने प्रस्ताव पास किया कि हम इलेक्शन में भाग नहीं लेंगे। इसलिए आपको यह लागू नहीं होता है, पर चुनाव में जो हिस्सा लेते हैं, उनको यह समझाइये। उतनी ही आपकी जिम्मेवारी रहेगी। दोनों में से किसीकी सूरत रोनी या गुस्सेवाली नहीं होनी चाहिए। इतना अगर हमने कर लिया, तो हमने बहुत काम कर लिया। मशीन में 'फ्रिक्शन' (घिसावट) होती ही है। अगर बिना फ्रिक्शन की मशीन बनायी, तो वह काम ही नहीं देगी, स्पीड नहीं आयेगी। हँसते खेलते इलेक्शन करोगे, तो भी उसमें कुछ-न-कुछ फ्रिक्शन होगी ही। उस समय हम तेल की एक डिब्बी तैयार रखें और जहाँ फ्रिक्शन मालूम हो, वहाँ तेल डालें। यह कला अगर हमको सध गयी, तो ये लोग शिकायत नहीं करेंगे कि हम लोग इलेक्शन से अलग हैं। बल्कि वे यही कहेंगे कि ऐसे थोड़े लोग अलग रहते हैं, तो अच्छा ही है! नहीं तो फ्रिक्शन में तेल कौन डालने बैठा है? अतः इतना काम आप कर सकते हैं।

तिरुपुर —ग्रामोदय खादी-सम्मेलन में
१८-१०-'५६

: २१ :

विश्व के राजनैतिक सन्दर्भ में प्रस्ताव

(दादा धर्माधिकारी)

लोकसत्ता की स्थापना के लिए हम जिस तरह का संविधान बनाते हैं, उसकी एक रचना करते हैं, उसे हम लोकतन्त्र कहते हैं। आज जिस तरह का लोकतन्त्र है, वह पूँजीवाद की स्थापना के साथ पश्चिम में स्थापित हुआ। इंग्लैंड के साथ उसकी परिस्थिति में उसका एक रूप हुआ, अमेरिका की परिस्थिति में उसका कुछ दूसरा रूप हुआ। यूरोप के और देशों की परिस्थिति में उसमें कुछ-न-कुछ परिवर्तन होता गया। क्रान्तिवादी जब से आये, तब से समाजवादी क्रान्तिवादी भी, अगर हम साम्यवादियों को छोड़ दें, तो यह मानते आये कि आज का लोकतन्त्र प्रत्यक्ष क्रान्ति का साधन नहीं हो सकता। यह विवाद बहुत दिनों तक चलता रहा। आज हम एक ऐसे मुकाम पर पहुँच गये हैं कि क्रान्ति का प्रत्यक्ष साधन भले ही आज का लोकतन्त्र न हो सकता हो, क्या वह क्रान्ति में सहायक हो सकता है ? क्या हम लोकतन्त्र को इस तरह से परिवर्तित कर सकते हैं, बदल सकते हैं कि क्रान्ति के लिए वह सहायक हो जाय ? इसका विचार काफी दिनों से देश में हो रहा है। गांधीजी जब थे, तब भी वह इसका विचार करते रहे। १९४८ में उनके जाने के कुछ दिन पहले यह निश्चय हुआ था कि सेवाग्राम में सब लोग एक जगह बैठेंगे और कुछ विचार करेंगे। तो, इसी बीच वह नहीं रहे। इसके कुछ पहले डॉ० कुमारप्पा ने एक लेख लिखा। प्रकाशित बाद में हुआ, लेकिन लिखा पहले था (देखिये पृष्ठ २६)। उसमें उन्होंने एक बात कही थी कि सत्ता की स्पर्द्धा अहिंसक समाज-रचना के लिए अनुकूल नहीं है। आप सब लोग यह जानते हैं कि आर्थिक क्षेत्र में से हम स्पर्द्धा का निराकरण करना चाहते हैं। हर दिन लोकतन्त्र की मार्फत आज हमारा जो कदम बढ़ रहा है, आज जो

आमदनियों में विषमता है, उसको कम करना चाहते हैं, टैक्सेशन से करना चाहते हैं, लेकिन कम करना चाहते हैं। हमारी कोशिश यह है कि आर्थिक क्षेत्र में स्पर्द्धा न रहे, होड़ न रहे। किसी तरह की चढ़ा-ऊपरी न रहे। एक तरफ से आर्थिक क्षेत्र में से स्पर्द्धा का निराकरण करने की कोशिश हो और दूसरी तरफ राजनैतिक क्षेत्र में जिस लोकतन्त्र का आधार ही सत्ता की स्पर्द्धा है, उसकी सहायता हम लेते रहें, उसको समाज-परिवर्तन का हम साधन समझें, यह कुछ असंगत-सा मालूम होता है।

सम्पर्क का बिन्दु सेवा हो

एक बात और। जन-सम्पर्क जब हम करना चाहते हैं और जन शक्ति का विकास करना चाहते हैं, तो जनता के साथ हमारा जो सम्पर्क-बिन्दु हो या जिसे "प्वाइंट ऑफ कंटैक्ट" कहते हैं—वह सम्पर्क बिन्दु सत्ता नहीं, सेवा ही होना चाहिए। अगर सत्ता सम्पर्क-बिन्दु हुआ, तो जन-शक्ति का जिस प्रकार से हम विकास करना चाहते हैं, उस प्रकार से वह नहीं हो सकता। इस प्रस्ताव में यह दृष्टि कहीं नहीं है कि हमको आज की राजनीति का बहिष्कार करना है। यह बहिष्कार का प्रस्ताव नहीं है, यह असहयोग का भी प्रस्ताव नहीं है। १९२१ में गांधीजी ने बहिष्कार का प्रस्ताव किया। उसमें असहयोग था। इसमें असहयोग नहीं है, इसमें बहिष्कार नहीं है, एक तटस्थ वृत्ति है, लेकिन यह बहुत जागरूक, सावधान और सहायक तटस्थ वृत्ति है। आज का जो लोकतन्त्र है, उस लोकतन्त्र की बुनियादों को आज की अपेक्षा अधिक पुख्ता करने की यह नीति है।

युग नयी करवट ले रहा है

इसके बाद एक और बात। यह मेरा अपना निदान है, रीडिंग है। सर्व-सेवा-संघ के सदस्यों का कुछ हो सकता है और कुछ का नहीं भी हो सकता है। मेरा अपना यह निदान है कि आज लोकतन्त्र दुनिया में एक ऐसी अवस्था पर पहुँच गया है, जहाँ वह आज की पक्षनीति से आगे कदम नहीं बढ़ा सकता। आज जिस तरह के पक्ष बने हुए हैं इस पक्षनिष्ठा की मार्फत और इसके बल पर अब

जनतत्र का कदम दुनिया मे आगे नहीं बढ सकता। मैंने देखा कि काग्रेस जैसी एक सस्था है और आज यह कोई लोकप्रिय सस्था नहीं है। यह मैं बहुत जिम्मेवारी के साथ कह सकता हूँ। चुनाव में यह जीत जाती है, यह उसकी लोकप्रियता का द्योतक नहीं है। एक दिन आ सकता है कि जब काग्रेस चुनाव मे भी जीतेगी, वह ऑफिस मे होगी, लेकिन पॉवर में नहीं होगी। सत्ता उसके हाथ मे बिल्कुल नहीं रह जायगी। वह दिन बहुत नजदीक आ रहा है। आज हमारे जैसे अहिंसा में विश्वास करनेवाले और हममे से कुछ ऐसे भी है कि वे शान्ति की स्थापना के लिए शायद अपने प्राण भी दे देने में नहीं हिचकेंगे, वे लोग भी कुछ असहायता का अनुभव कर रहे है। एक तरफ गुडे का डडा है, दूसरी ओर सरकार की फौज और सेना की गोली है। दोनों के बीच मे नागरिकता पिस रही है। नागरिक जीवन जहाँ फक्शन नहीं करता, साधारण नागरिक जीवन जहाँ फक्शन नहीं करता, क्रियाशील नहीं होता, वहाँ कोई भी जनतत्र किसी भी प्रकार पनप नहीं सकता। यह तो एक भयानक परिस्थिति है। इसको देखकर मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि इस देश में काग्रेस के मुकाबले दूसरी कोई पार्टी पनप नहीं सकती या बन नहीं सकती। इसका मुख्य कारण यह है कि आज की पक्षनिष्ठ लोकशाही के दिन भी अब बीत रहे हैं। शायद लोकतत्र अब कुछ नयी बुनियादों पर रखा जायगा, तभी वह आगे बढ सकेगा। चूँकि यह एक आशा की परिस्थिति पैदा हुई है कि तानाशाही दुनिया में से खतम हो रही है। यह जो स्टालिन-प्रकरण रूस मे हुआ, इसको मै इसका द्योतक मानता हूँ। जिस तरह से साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद दुनिया मे से समाप्त हो रहा है, उसी तरह से "डिक्टेटरशिप ऑफ दि प्रोलेटेरियन"—एक वर्ग की तानाशाही का जमाना भी अब बीत रहा है। और मुझे प्रसन्नता इस बात की है कि जयप्रकाश बाबू ने अपने निवेदन मे इसका सकेत अभी हाल में ही किया है। वे यहाँ उपस्थित है, लेकिन उनके पीछे मै यह कहा करता हूँ कि उनका व्यक्तित्व कुछ ऐसा बना हुआ है कि जो अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति है और जमाने मे आकाक्षा होती है, वह पहले उनके हृदय मे प्रतिबिम्बित होती है, बाद मे बुद्धि मे उसका प्रकाश पड़ता है। मै इसको एक नया प्रकाश बिन्दु मानता हूँ कि अब दुनिया मे से तानाशाही भी खतम हो रही है।

नया प्रकाश-बिन्दु

तानाशाही खतम हो जाय और लोकशाही मे जन-शक्ति के निर्माण का माद्दा पैदा न हो, तो लोकशाही को कदम रखने के लिए दुनिया में चप्पाभर जमीन रहनेवाली नहीं है। इसलिए सर्व-सेवा-सघ इस नतीजे पर पहुँचा है कि हमको चुनाव के मामले मे तटस्थ रहना चाहिए, सावधान रहना चाहिए और जन-शक्ति के निर्माण मे जो प्रगति हम कर रहे है, उसमें से दूसरी तरफ अपना ध्यान नहीं बँटने देना चाहिए। जो लोग आज सत्ता की राजनीति मे है, उनकी तरफ से इसमे किसी प्रकार का हर्ज नहीं है, कोई पावित्र्यवाद नहीं है। यह नहीं माना गया है कि जो लोग वह काम कर रहे है, वे घटिया है और हम लोग कुछ उनसे बढ़कर है, अधिक पवित्र है। इसमे पलायनवाद भी नहीं है। यह नहीं है कि सत्ता की राजनीति मे से भागकर कुछ अलग रह जाना चाहते है, जिसमे हमारे चरित्र पर, हमारे व्यक्तित्व पर किसी प्रकार के छींटे न लगे। इसमे यह भी कोई वृत्ति नहीं है। एकमात्र विचार इसके पीछे यह है कि अगर विधायक जन-शक्ति का निर्माण हमको करना है और आज का जो लोकतन्त्र है, उस लोकतन्त्र के पीछे लोक-शक्ति के अधिष्ठान को उपस्थित कर देना है, तो इसके सिवा दूसरी कोई नीति सर्व-सेवा-सघ को इस वक्त उचित मालूम नहीं हुई। लेकिन सर्व सेवा-सघ सर्वोदय का कोई ठेकेदार नहीं है। और यह कोई शकराचार्य का पीठ भी नहीं है कि यहाँ से कोई व्यवस्था सर्वोदय के बारे मे दी जायगी और लोग उसको मानेंगे। अगर लोग इसको इस तरह से मानने लगेंगे और ऐसा बन जायगा, तो इस सस्था की उपयोगिता भी समाप्त हो जायगी और उसका जीवन भी समाप्त हो जायगा। नम्रतापूर्वक हमको यही मान लेना चाहिए कि सर्व सेवा-सघ के अलावा और सर्व सेवा-सघ मे भी ऐसे व्यक्ति हो सकते है, जो यह मानते है कि सत्ता की राजनीति का उपयोग हम जिन सिद्धान्तों को दुनिया मे चरितार्थ करना चाहते है, उनको चरितार्थ करने के लिए हो सकता है। उदाहरण के लिए दादा कृपालानी है। दादा कृपालानी को हमने सर्वोदय विचार की दृष्टि मे और गाधी-विचार की दृष्टि से सर्व-सेवा-सघ के किसी भी व्यक्ति से कम नहीं माना है और

विनोबा से किसी प्रकार कम नहीं, बल्कि बराबरी का माना है। ढेबर भाई हमारे बीच कभी-कभी आकर भूदान का काम करते हैं। वह भी गाधी और सर्वोदय के विचार को माननेवाले हैं। जयप्रकाश बाबू स्वय हैं। तो आज की परिस्थिति मे उसकी (सत्ता की राजनीति की) तरफ से बिलकुल उदासीन रहना, तटस्थ रहना हमारे लिए वाछनीय नहीं होगा, ऐसा विचार कुछ लोगों का हो सकता है—जो उतने ही निष्ठावान् सर्वोदय-निष्ठ व्यक्ति हैं, बल्कि हम लोगों से अधिक निष्ठावान् हैं। सर्व सेवा सघ का ध्यान इस तरफ भी है, इसलिए दूसरे हिस्से मे यह कहा गया कि ऐसे व्यक्ति वोट देंगे और वोट देना अपना कर्तव्य मानेंगे, फिर भी सर्व-सेवा सघ ने उनकी तरफ से नम्रतापूर्वक यह आशा की है कि जिन लोगों का अहिंसक साधनों के लिए आग्रह नहीं है, ऐसे व्यक्तियों का वहाँ जाना वह पसन्द नहीं करेंगे। जनतन्त्र के लिए नागरिक निरुपाधित होना चाहिए। निरुपाधित से मेरा मतलब यह है कि उसके पीछे जाति, धर्म इस प्रकार का कोई एक विशेषण या उपाधि नहीं होनी चाहिए। यह विचार सर्व-सेवा-सघ के दिल मे है, इसलिए उसने यह भी जोड़ दिया है कि जो सम्प्रदायवादी होंगे, उनके लिए भी वह अपना वोट खर्च नहीं करेगा। और अन्त मे उसने यह भी कह दिया है कि आखिर मे हमको पक्षनिष्ठा की तरफ से लोकनिष्ठा की तरफ जाना है, तो हम यह भी आशा करते हैं कि पक्ष अगर किसी गलत आदमी को खड़ा कर दे, तो हम पक्षनिष्ठ हैं, इस वजह से उस आदमी को अपना वोट न दें। यह पक्षनिष्ठा से लोकनिष्ठा की तरफ एक कदम आगे बढ़ने की तरह है, यह विचार सर्व सेवा-सघ का है।

विश्व का राजनीतिक मानस और प्रस्ताव

अत मे एक बात और आप लोगों की सेवा मे निवेदन कर दूँ। जिस समय और जिस परिस्थिति मे पक्षों का निर्माण हुआ और यह पक्ष बने इग्लैंड मे और अमेरिका मे—वह परिस्थिति और जिसे वह सदर्भ या 'कटेक्स्ट' कहते हैं, वह आज की दुनिया मे कहीं नहीं है। इसलिए वहाँ भी अब एक विचार पेश हुआ। और अभी कल ही एक अखबार मे निकला था कि आखिर अपनी आत्मा, अपनी

कांस्टीच्यूएन्सी याने अपना निर्वाचन-क्षेत्र और अपनी पार्टी, इन तीन निष्ठाओं में से कौन-सी निष्ठा का अंत में पार्लमेंट का सदस्य पालन करे, किसको वह सरल, श्रेष्ठ माने। क्या अपने निर्वाचन क्षेत्र को माने? तो वह मेंबर एक निर्वाचन-क्षेत्र का हो सकता है, लेकिन पार्लमेंट में जाने के बाद तो वह इंग्लिश पार्लमेंट का मेंबर बन जाता है। फिर वह किसी एक क्षेत्र का प्रतिनिधि नहीं रह जाता। अपनी पार्टी को श्रेष्ठ माने तो पार्टियों के सिद्धांत जितने पहले स्पष्ट थे, उतने स्पष्ट नहीं रह गये हैं। पार्टियों के सिद्धांत और कार्यक्रम अब एक-दूसरों से मिलते-जुलते हैं। अगर जुड़वा भाई नहीं, तो सौतेले भाई जरूर मालूम होते हैं। उनमें एक तरह का कौटुम्बिक साधर्म्य-सा आ गया है—इंग्लेंड में, अमेरिका में और भारतवर्ष में भी। यह परिस्थिति आज के पक्ष-भेदों की है। साधन निष्ठा में भी उतना अंतर अब नहीं रह गया है, जितना पहले था। इन सारी बातों का विचार करते हुए दुनियाभर में जितने लोकसत्तावादी हैं, वे अब इस समस्या का विचार कर रहे हैं कि आगे चलकर लोकसत्ता का और लोकतंत्र का स्वरूप क्या होगा। इसलिए सर्व-सेवा संघ ने एक बहुत छोटा-सा संकेत इसमें किया है। असल में यह जो संकेत किया गया है, उसका सारा श्रेय एक तरह से जयप्रकाश बाबू को है। उन्होंने अपनी प्रजा-समाजवादी पार्टी से कहा कि मुझसे लोग पूछते हैं कि तुम वोट किसको दोगे, तो उन्होंने कहा कि मैं प्रजा-समाजवादी पार्टी के उम्मीदवार को वोट दूँगा। लेकिन प्रजा-समाजवादी पार्टी का उम्मीदवार अगर ऐसा हो कि जिसे मैं उपयुक्त नहीं समझता, तो मैं उसको वोट नहीं दूँगा, पार्टी का उम्मीदवार भले ही हो। इसको हम पक्ष-निष्ठा से लोकनिष्ठा की तरफ एक अगला कदम मानते हैं। इसलिए इस प्रस्ताव में उल्लेख कर दिया गया है। पहले हिस्से में सिर्फ सर्व-सेवा-संघ ने अपनी नीति स्पष्ट की है कि हमारी नीति बहिष्कार की नहीं है, असहयोग की नहीं है, सावधान, जागरूक, भावरूप और तटस्थता की है। क्यों है? आज जिस तरह का लोकतन्त्र बना हुआ है, वह स्पर्धा के सिद्धान्त पर चलता है, स्पर्धा के तत्त्व पर चलता है। आर्थिक क्षेत्र में से हम स्पर्धा को हटा देना चाहते हैं। राजनैतिक क्षेत्र में जो लोकतन्त्र होगा, उसमें भी अब स्पर्धा नहीं रहनी चाहिए। दूसरे हिस्से में उन लोगों के लिए कहा गया है कि जो अहिंसा को मानते हैं, अहिंसक समाज-रचना

को मानते हैं, सर्वोदय के सिद्धांतों को भी मानते हैं, फिर भी नागरिक के नाते
देना अपना कर्तव्य मानते हैं। मैं मानता हूँ कि इतना स्पष्टीकरण पर्याप्त होगा

पलनी
१९-११-'५६

: २२ :

समझौते की जरूरत

(जयप्रकाश नारायण)

मै जो कहने जा रहा हूँ, वह मेरे अपने ही बारे मे है। अपने व्यक्तिगत वि और व्यक्तिगत आचार, दोनों के बारे में निवेदन करूँगा। वग साहब ने सुबह जो कहा, उसकी वजह से भी मुझे लगा कि कुछ निवेदन करना चाहिए। रात शकररावजी से इस विषय पर काफी चर्चा हुई और मैंने अपनी भूमिका उ सामने रखी। जो सिद्धान्त सर्व-सेवा-सघ के प्रस्ताव में, चुनाव के सम्बन्ध ग्रथित किये गये है, उनसे हमारा कोई मतभेद नहीं है और किस प्रकार से सर्व के कार्यकर्ता को 'निरुपाधि' बनना चाहिए—इस सम्बन्ध मे जो कहा गया उसके बारे में भी हमें कुछ कहना नहीं है। अहिंसा और सर्वोदय की दृष्टि से के साथ हमारा सम्बन्ध क्या हो, वह सब उस प्रस्ताव मे कहा गया है। लोकत की निष्ठा के सम्बन्ध मे जो कुछ कहा गया है, वह सब मुझे सर्वथा मान्य है।

मेरी अपनी कठिनाई

इतना सब एकमत होने के बाद भी विचार की दृष्टि से और व्यक्ति परिस्थिति की दृष्टि से दिक्कत कहाँ आती है, वह आपके सामने रख देता जैसा आप सभी जानते हैं कि मेरा साधारण सम्बन्ध प्रजा-समाजवादी पार्टी आज भी कायम है—इस माने मे कि मै उसका साधारण सदस्य हूँ। उस वि मे म आपसे कुछ अधिक नहीं कहूँगा। यह वास्तविकता है कि आज भी सदस मैंने कायम रखी है। जिन विचारों को मैंने मान्य किया है, उनके अनुसार अमल तो मुझे सदस्यता छोड़ देनी चाहिए, इस बारे मे कोई सन्देह मेरे मन में

है। सदस्यता के प्रश्न का भी कुछ विचार हुआ। उसका भी थोड़ा सा इतिहास है। जीवनदान के बाद प्रश्न उठा था, मुजफ्फरपुर में। उस समय न केवल मेरी ही राय थी, बल्कि बाबा की भी राय थी कि सदस्यता मुझे कायम रखनी चाहिए। बाद में बाबा की राय बदली और मेरी भी राय बदली। धीरेन्द्र भाई की राय, मेरे खयाल में, मुजफ्फरपुर में ही थी कि मुझे सदस्यता त्याग देनी चाहिए। कुछ विशेष परिस्थितियाँ हैं। खैर, आप तो इतना ही समझ लें कि यह मेरी अपनी कमजोरी है, जिसके कारण जो विचार जँचा, उसका आचरण नहीं हुआ। शायद ऐसा समय शीघ्र ही आयेगा, जब कि इस सम्बन्ध में मैं अपने विचार पर अमल कर सकूँगा। जीवन में यह कोई पहला ही मौका नहीं है कि विचार पर पूरा आचरण मुझसे नहीं हुआ है। ऐसा अक्सर होता रहता है और शायद आगे भी हो—यह एक कमजोरी है।

जहाँ तक मैंने बग साहब का भाव समझा, मैं नहीं कह सकता कि शायद उनका ऐसा खयाल रहा हो कि मैंने भूदान का कार्य छोड़कर कोई और कार्य उठा लिया। ऐसा किसीका कहना हो, तो उसकी भूल होगी, ऐसा मैं समझता हूँ। मैंने कोई दूसरा काम उठाया नहीं है और मेरी एकाग्रता कुछ भंग हुई है, ऐसा मैं नहीं समझता हूँ। आत्म-संयम की मुझमें कमी है। तो जिस तरह सारी शक्ति इस कार्य में किसी संयमी व्यक्ति को लगानी चाहिए, उस तरह नहीं लगा पाया हूँ, यह दूसरी बात है। लेकिन मेरे सामने यही एक कार्य है, दूसरा कार्य नहीं है। मैं एशियाई समाजवादी सम्मेलन में गया, तो वहाँ भी आपका ही काम किया। मैं यह तो नहीं कह सकता कि उस काम का मुझे बड़ा गर्व है। लेकिन यह सब लेकर अच्छा ही काम हुआ।

दौरा मुल्तवी रखने का कारण

व्यक्तिगत विचार की जहाँ तक बात है, मैं अवश्य कुछ विचार तफसील में आपके सामने रखना चाहता हूँ। एक बात और कह दूँ। एकाग्रता भंग न होते हुए भी मेरा जो अखिल भारतीय दौरा होनेवाला था, वह कुछ दिनों के लिए मुल्तवी हुआ है। इसकी कुछ कैफियत है। यह कहने की आवश्यकता

इसलिए हुई कि बग साहब ने खास इसी चीज का जिक्र किया। काम तो, दौरा न भी करूँ तो भी, भूदान का ही करता हूँ, दूसरा काम न करना है और न कर रहा हूँ। लेकिन कुछ उलझन ऐसी आयी कि इस चुनाव के सन्दर्भ में मैंने ऐसा निश्चय किया। दादा ने मना भी किया कि इस तरह की प्रतिज्ञाएँ कर लेते हो, यह ठीक नहीं है। फिर भी मुझे लगा कि जो विचार मैंने व्यक्त किये है—जिनके सम्बन्ध में अभी निवेदन करने जा रहा हूँ—विचारों को व्यक्त करने के बाद, यह सभव है कि इस प्रकार के विचार मे बार-बार व्यक्त करूँ। ऐसी हालत मे अगर मै दौरे पर इलेक्शन के समीप के हफ्तों मे या महीनों मे घूमता हूँ, तो मेरे बारे मे गलतफहमी हो सकती है और काम को नुकसान पहुँच सकता है इसलिए मैंने निश्चय किया कि जब चुनाव खतम हो जायगा, तो अप्रैल के महीने से फिर अखिल भारतीय दौरा करूँगा। वैसे तो अक्तूबर के अन्त तक दौरा मेरा था ही। नवम्बर का कुछ हिस्सा बीता बनई मे और अभी इस दिसम्बर के बाद तक मैंने निश्चय किया है कि बिहार मे ही रहूँगा। बिहार में मै अगर दौरा भी करूँ, तो मेरे सम्बन्ध म शायद गलतफहमी न हो, कम-से कम अपने परिवार में और अपने समुदाय मे तो नहीं होगी, आम तौर मे भी जनता मे शायद न हो। लेकिन और प्रान्तो मे गलतफहमी हो सकती है।

हम आगे न बढ़ सके

अपने विचार मे आपके सामने पेश करना चाहता हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि आज की परिस्थिति में जो आपने फैसला किया, सिद्धान्त की दृष्टि से ठीक होते हुए भी व्यवहार की दृष्टि से आपको कुछ और आगे जाना चाहिए। कल हमने गौरी बाबू से और शकरगवजी देव से कहा था कि 'डेमोक्रेसी' लोक-शाही की परिभाषा 'कॉम्प्रोमाइज' याने 'समझौता' की गयी। और अहिंसा की भी परिभाषा, म मानता हूँ कि वही है। विचार मे तो कोई समझौता हो ही नहीं सकता। लेकिन व्यवहार मे करना होता है। आज भी रात-दिन व्यवहार मे समझौता हम कर रहे है। ओमप्रकाशजी जैसे हमारे कुछ मित्र है, जो प्रश्न उठाते है कि शासनमुक्त समाज का प्रयोग करना है इत्यादि। फिर भी हम

तो शासन से तरह-तरह की मदद लेते हैं और उसके रुपयों से कुछ काम करना चाहते हैं। इस पर ये हमारे मित्र उठाते हैं आपत्ति, लेकिन हमको लगता है कि यह भी एक प्रकार का समझौता ही है। हम देश को शासन-मुक्त समाज की तरफ ले जाना चाहते हैं। मगर आज 'आकाश-कुसुम' की तरह वह शासन-मुक्त समाज लोगों को असम्भव लगता है। एक दृष्टि से देखने पर बहुत कुछ प्रगति हुई है। मैंने भी कांचीपुरम् में कहा और आज यहाँ विमला बहन ने भी कहा, वह सबको मान्य है। दूसरी दृष्टि से जो हमने अपने लिए उद्देश्य रखा, उसके लिहाज से विचार करें, तो हम कितना कम आगे बढ़े हैं? आज साढ़े पाँच लाख गाँवों में से, इतने वर्षों तक बापू के जमाने में कार्य हुआ और बाद में भी इतना सारा काम हुआ, तो भी एक भी गाँव ऐसा नहीं है, जिसको हम नमूने के तौर पर पेश कर सकें। शायद एक गाँव भी ऐसा नहीं है, जहाँ ग्राम-राज कायम हुआ हो। सारे देश को लगता है और इस दृष्टि से ठीक लगता है कि आज की हालत में लोगों के रोटी, रोजी, शिक्षण, स्वास्थ्य का जो कुछ सवाल है, वह सरकार के साथ जुड़ा हुआ है। राज्य कैसा है, चुनावों का क्या नतीजा निकलता है, क्या नहीं निकलता है, देश की अपार जनता को, सब लोगों को लगता है कि इसीसे हमारा भाग्य बनने-बिगड़नेवाला है। दर असल किस हद तक भाग्य बननेवाला है, किस हद तक भाग्य बिगड़नेवाला है, यह बात दूसरी है। सच तो यह है कि न बहुत बनेगा, न बहुत बिगड़ेगा। आखिर देश की जनता के जीवन से कितना थोड़ा सम्बन्ध सरकारी कामकाज या पञ्चवर्षीय योजना आदि का है? लेकिन फिर भी सरकार की तरफ से जो जो कार्य हो रहे हैं, उन सब कार्यों का असर जनता पर होने ही वाला है और हो रहा है।

चुनाव में समझौता

चुनाव में एक समझौता आपने ऐसा किया कि सर्वोदय-विचार के जो कुछ लोग होंगे, वे अपना मतदान देना चाहेंगे। स्वाभाविक है कि वे सोच-विचार कर मतदान देंगे। यह आपका एक समझौता है। हम यह विचार लोगों के सामने रखना चाहते हैं कि यह जो [illegible] जनता समझती है कि सरकार के हाथों

से ही हमारे भाग्य का निर्माण होगा, वास्तविकता ऐसी नहीं है। सत्ता की ओर से जनता का ध्यान हम मोड़ना चाहते हैं। उसके परावलवन को छुड़ाना चाहते है। उसमे शक्ति पैदा करना चाहते है और नीचे से स्वराज्य का निर्माण करना चाहते है। यह सब करना है तो उस दृष्टि से, हृदय-परिवर्तन की दृष्टि से, पक्ष-निष्ठा मिटाने की दृष्टि से, पक्ष-परपरा को मिटाने की दृष्टि से, यह तय किया कि हम चुनावो से कोई सबध नहीं रखेंगे और मतदान भी नहीं करेंगे, स्पष्ट शब्दो मे नहीं कहा गया। फिर भी प्रस्ताव का जो पहला पैरेग्राफ है, उसका अर्थ यही होता है और जब पूछा गया, प्रबध समिति मे, कि यह अर्थ बताया जायगा कि नहीं, तो स्पष्ट कहा इस प्रस्ताव के बनानेवालो ने, कि यही अर्थ उसका है। लेकिन फिर भी कुछ समझौता, 'काम्प्रोमाइज' आपने किया। ऐसे विचार के लोग जो सर्वोदय को मानते है और जो निश्चित ही अपना मत भी देना चाहते हैं, उनसे इस प्रकार की अपेक्षा रखना स्वाभाविक है कि हिंसा मे विश्वास रखनेवालो को, सम्प्रदाय के माननेवालो को, वे वोट नहीं देंगे।

मेरा खयाल है कि इससे एक कदम और आगे जाने की जरूरत थी। और जनता की अपेक्षा भी आपसे वैसी थी। हम लोग पहले ऐसा कहते भी थे। समाज मे ऐसी एक सेवा-शक्ति और नैतिक शक्ति का निर्माण हो, जो सत्ताधारियो के लिए और सत्ता-प्रणाली के लिए, एक शुद्ध करनेवाली, एक करेक्टिव, एक प्रभाव डालनेवाली शक्ति साबित हो। सत्ता हाथ मे न लेते हुए भी जब तक सत्ता की सस्थाएँ है, तब तक उन सस्थाओं पर हमारा प्रभाव पडे, नैतिक प्रभाव पड़े, यह हम कहते आये है। अब हमारी अपेक्षा यह है कि जो सर्वोदय-विचार अब तक फैला है, जिस हद तक वह कारगर हुआ है, उससे जो शक्ति पैदा हुई है, उस शक्ति का प्रत्यक्ष प्रभाव सशोधक के रूप में पडना चाहिए, इस चुनाव के ऊपर भी पड़ना चाहिए। मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि हमारी तरफ से यह कुछ करने की आवश्यकता है कि हम अमुक पार्टी को वोट दें या ऐसा कुछ हम जनता को सुझाये कि किस व्यक्ति को वोट दें। लेकिन हम जनता को यह जरूर समझायें कि मतदान आप करने जाते हैं, तो इस प्रकार से विचारकर, अमुक बातें सोचकर मतदान करें। कहीं मैने सुना, शायद बम्बई मे एक भाई ने कहीं कहा

कि कोई उम्मीदवार वोट माँगने आयगा, तो उससे पूछना कि तुमने सम्पत्ति-दान और भूदान दिया है या नहीं ? जो बात मैं कह रहा हूँ, उसका यह एक छोटा-सा नमूना है। तो उनके जवाब में कहा गया कि भाई, इस तरह से हर उम्मीदवार, हर पार्टी का उम्मीदवार कहेगा कि हाँ, हमने दिया है। पहले नहीं भी दिया होगा, तो उस वक्त दे देगा, ताकि पूछने पर वह बता सके कि हमने दिया है। लेकिन इस तरह से वह कर दे, तो भी मैं समझता हूँ कि एक तरह से जन-मानस का निर्माण हो रहा है, विचार फैलाया जा रहा है। यह सब लोग कह दें, कम्युनिस्ट भी कह दें, जनसंघी भी कह दें, कांग्रेसी भी कह दें, समाजवादी भी कह दें कि हमने भूदान दिया, सम्पत्ति-दान दिया, तब यह प्रश्न उठता है कि इनमें भेद क्या रहेगा ?

सारा विचार हम जनता को समझायें और कहें कि तौलो और यह तौल करके अपना मतदान करो। तब आज जिस हालत में हम हैं, आज से बीस वर्ष बाद ऐसी परिस्थिति पैदा हो सकती है कि हमारा आदर्श केवल एक गूलर का फूल ही नहीं रहेगा। जनता को लगेगा कि ये लोग जो सारी बातें कर रहे हैं कि शासन-मुक्त समाज बनेगा, सब कोई अपना-अपना काम कर लेंगे, शासन की आवश्यकता ही नहीं रहेगी इत्यादि, उसमें से कुछ चीज प्रकट हो रही है। पाँच-दस हजार गाँवों में ग्रामराज्य की स्थापना हुई है, सर्वसम्मति प्रथा का कुछ विकास हुआ है, अल्पमत-बहुमत का झगड़ा कुछ क्षेत्रों में पीछे हटा है इत्यादि जो लोकनीति है, उसका कुछ प्रत्यक्ष दर्शन लोगों को होगा, तो व्यावहारिकता की दृष्टि से मैं समझता हूँ कि आप कह सकते हैं कि भाई, उधर की कुछ सोचना ही नहीं है, इधर ही चलना है। आज मुझे ऐसा नहीं लगता कि हम जनता से यह कह सकते हैं। मैं यह भी नहीं कह रहा हूँ कि सर्व-सेवा-संघ इस प्रकार का कोई प्रस्ताव करे। प्रस्ताव में कोई संशोधन करने की बात मैं नहीं कह रहा हूँ, लेकिन अभी सर्व-सेवा-संघ इतनी दूर तक जाय, अपने प्रस्ताव में भी, तो मैं उसको सही मानूँगा, उचित मानूँगा। उतना समझौता आज उसे करना चाहिए।

दादा ने कहा कि यह कोई पलायनवाद नहीं है। जिस भाव से उन्होंने कहा

कि पलायनवाद नहीं है, उस भाव से नहीं है पलायनवाद। क्योंकि सिर्फ अभावात्मक नहीं, भावात्मक भी हमारा कार्य हो रहा है। कुछ हम निर्माण कर रहे हैं। लेकिन आज की हमारी जो परिस्थिति है, हमारे द्वारा जितना निर्माण-कार्य हुआ है, साथ-साथ जितना प्रसार दूसरे तरह के कार्यों का है, उसको देखते हुए आज हमें अपना कर्तव्य लगता है कि जनता के सामने ऐसे कुछ विधायक विचार रखे कि जनता सही निर्णय कर सके और चुनावों में प्रभावशाली भाग ले सके। इस कर्तव्य से हम हटते हैं, तो उस दृष्टि से यह प्रस्ताव पलायनवाद भी लगता है। बहरहाल, सर्व सेवा-संघ न करे, परन्तु व्यक्तिगत रूप से यह किया जाय, जिनको यह लगता हो कि यह प्रस्ताव ठीक नहीं है, उनका विचार संघ स्वीकार न करे, तो भी उसे सहन करना चाहिए, और केवल सहन ही नहीं करना चाहिए, बल्कि व्यक्ति को यह अधिकार देना चाहिए कि हाँ, ऐसा हो सकता है। संस्था की तरफ से न हो, व्यक्तिगत रूप से हो। समझौते की मर्यादा यहाँ तक जाय। सर्वोदय-विचारवाले ऐसे लोग भी हैं, जो पक्षों के सदस्य हैं। ढेबर भाई कांग्रेस का भी काम करेंगे। कृपालानीजी पी० एस० पी० का भी काम करेंगे। दोनों सर्वोदय-विचार रखनेवाले व्यक्ति हैं। लेकिन ऐसे लोग भी जो निष्पक्ष भूमिका पर खड़े हैं, इस तरह के विचार रख सकते हैं। मैं अपनी विशेष परिस्थितियों के कारण एक पक्ष में रहा हूँ, लेकिन मेरा यह दावा है कि मैंने जो भी निदान देश के सामने इन दिनों रखे हैं, वे निष्पक्ष भाव से ही रखे हैं, चाहे पटना के गोलीकाण्ड पर मैंने कहा हो, चाहे विरोधी पक्षों के मिलकर काम करने के सम्बन्ध में कहा हो, चाहे अभी हंगरी के सम्बन्ध में कहा हो। चूँकि मैं 'निरुपाधि' नहीं हूँ, इसलिए लोगों को मुझे पक्षवादी कहने का मौका मिलता है। मेरा 'पक्ष' कमजोर बन जाता है। यहाँ 'पक्ष' से मेरा मतलब 'पार्टी' नहीं है। पक्ष से मेरा मतलब है, मेरी 'बाजू'। मैं जो दलील पेश करता हूँ, वहाँ 'पक्ष' इस माने में कि जो बात मैं कह रहा हूँ, उसका असर कम हो जाता है। लोग समझते हैं कि पक्षपात की दृष्टि से यह मनुष्य कह रहा है। लेकिन मैं तो निष्पक्ष दृष्टि से कहता हूँ। उसी दृष्टि से चुनाव के भी सम्बन्ध में मैंने अपनी राय प्रकट की है।

जितने ही प्रश्न हमारे सामने देश के और विदेश के आते हैं और उनके

विषय में अक्सर हम चुप रहते हैं। हमें बोलना चाहिए। हमें इस बात का कोई बहुत भय नहीं है कि कई आवाजों में हम बोलते होंगे। चूँकि हमारी मूलभूत भूमिका एक है, थोड़ा-बहुत अगर मतभेद रहता है, तो उसका समन्वय हो जाता है। आज देश की जो राजनैतिक परिस्थिति है, उस सम्बन्ध में मैंने एक विचार रखा। उस पर से सर्वोदय-परिवार में भी काफी भ्रम हुआ। और मेरे प्रति कुछ शंकाएँ भी निर्माण हुईं। व्यक्तिविषयक शंकाओं को छोड़ दिया जाय। कहाँ तक मैंने अपने संकल्प का पालन किया है, कहाँ तक नहीं किया है, यह छोड़ दें। मैं कोई अपनी सफाई नहीं देना चाहता। विचार की दृष्टि से ही मैं निवेदन करना चाहता हूँ। आज भिन्न-भिन्न कार्य देश में होते हैं। मान लीजिये कि किसी विधान-सभा में एक विधेयक, एक बिल, आता है, भूमि-व्यवस्था के सुधार के बारे में। तो हम अपना मत उस पर प्रकट करें, प्रकाशित भी करें। कोई व्यक्तिगत रूप से भी मिलकर उनसे कह सकते हैं, जिस विभाग का वह काम है, उस मन्त्री से कह सकते हैं याने आज जो कुछ हो रहा है, उसके सुधार के लिए हम उपाय बताते हैं। केवल इतना ही नहीं कह देते कि यह तुम्हारा बिल बेकार है, हम तो ग्रामीकरण के पक्ष में हैं। ग्रामीकरण का ही कानून बनाओ और बाकी सारा तुम्हारा कानून रद्दी है, ऐसा हम नहीं कहते। हम यह कहते जरूर हैं कि भाई, यह अपूर्ण है, अधूरा है, इससे तुम जो समस्या हल करना चाहते हो, वह हल नहीं होती। फिर भी तुम्हारी मर्यादाओं को मानते हुए उसमें कितना सुधार हो सकता है, यह हम बताते हैं। एक मिसाल ले लीजिये। पंचवर्षीय योजना है। बहुत बड़ी चीज देश के लिए है। अब इसमें भी हम अपना सुझाव देते हैं कि यहाँ अमुक दोष है, वहाँ अमुक दोष है। यह नहीं कह देते कि सारी तुम्हारी योजना दूसरे ही प्रकार की है। हमको तुम्हारी योजना से कोई मतलब नहीं है। उसे सुधारने की कोशिश करते हैं। उसी प्रकार से आज एक राजनैतिक व्यवस्था देश में है। उस व्यवस्था के सुधार के बारे में भी हमारा अगर कुछ मत है, तो इसलिए कि हम लोकनीति मानते हैं। आज की राजनीति के सुधार के सम्बन्ध में हम चुप न रहें, चुनाव की प्रथा क्या होनी चाहिए, चुनाव क्षेत्र कैसे होने चाहिए, वोट देने की पद्धति क्या हो, प्रत्यक्ष चुनाव हो या अप्रत्यक्ष चुनाव होना

चाहिए, इत्यादि प्रश्नों पर हमें अपना मत व्यक्त करना चाहिए। बाबा ने आज की जो पक्ष-पद्धति है, उसके सुधार की दृष्टि से भी कई सुझाव दिये हैं, जिससे किसी भी पार्टियों के ईमानदार और समझदार प्रमुख व्यक्ति पार्लमेंट में जा सकें। वहाँ जाने पर सभी देश के प्रतिनिधि हैं। अपने-अपने विचार सब समझायें और साथ-साथ काम करें। वहाँ अगर हर पार्टी का 'विप' चलता हो, तो 'विप' नहीं चले, इत्यादि। और कई बातें बहुत मार्के की बाबा ने सुझायी हैं। हमारा विश्वास लोकनीति में है, इसलिए आज की राजनीति की तरफ हमको देखना ही नहीं है, ऐसा रुख हम अख्त्यार न करें। इस पद्धति का किस प्रकार से सुधार होगा, धीरे-धीरे इसका ही विकास किस प्रकार उस तरफ को हो जायगा, आज जो पद्धति प्र त्यक्ष मे है, प्रत्यक्ष ठीक तरह से कैसे चले, इसका ध्यान भ ी हमें रखना चाहिए।

देश की नाव में सूराख

हमें गगा पार करनी है, पटना से पहलेजा जाना है और उसके लिए जहाज नहीं है। जहाज हमारा बन रहा है। अब अगर हमको जाना है, तो नाव में ही जाना होगा—'कट्री बोट' मे। अगर उस नाव मे छेद है, तो क्या हम कहेंगे कि उस छेद को तरफ हमारा ध्यान नहीं है? मुझे यह ठीक नहीं लगता। उस नाव पर आज देश सवार है—इस लोकसभा की नाव पर या सविधान की नाव पर। हमको मालूम है कि इस नाव मे सूराख है। क्या सूराख है? सूराख यह है कि यह जो भिन्न-भिन्न पक्षों की पद्धति है, यह तभी ठीक-ठीक चलेगी जब कि शासन करनेवाली पार्टी के विरोध मे एक सबल विरोधी पक्ष होगा। अगर ऐसा नहीं होगा, तो शासन करनेवाले कितने भी अच्छे लोग हों, वे शासन ठीक नहीं चला सकेंगे। उनका पतन होगा, वह पद्धति बिगड़ेगी। अब यह बात मैं कहता हू, तो काग्रेस के मित्रो को लगता है कि यह आदमी काग्रेस को बुरा समझता है। जवाहरलालजी जैसे नेता, जिनसे बडा आज देश में कोई नेता नहीं है, उन पर भी इसकी श्रद्धा नहीं है। ऐसी बात उसम से वे निकालते है। मेरे मन में ऐसी कोई बात नहीं है। काग्रेस मे दोष तो अनत हैं। काग्रेस के लोग भी उन दोषों को जानते है। देश भी जानता है। लेकिन जो दूसरे पक्ष हैं, वैसे

प्रजा-समाजवादी पक्ष, ये दूसरे पक्ष निर्दोष हैं, ऐसा कोई नहीं कहता। सबमें बहुत-से दोष हैं। लेकिन यह जो पक्ष-पद्धति है, उसीको आपने अपनाया है, और उसीके आधार पर संविधान बनाया है। तो, जैसे एक बाँध बनाना, लोहे का कारखाना बनाना, 'विकास योजना' चलाना, निर्माण का काम है, वैसे ही आप कहते हैं, हम देश का निर्माण कर रहे हैं, उसी तरह से जो लोग मौजूदा पार्लमेंटरी पद्धति में विश्वास करते हैं, उनके लिए निर्माण का काम यह भी है कि देश में विरोधी दल को उठाना। मुस्तफा कमालपाशा ने ऐसा ही किया। आपके शायद ध्यान में होगा कि उस वक्त तुर्की में था एक ही पक्ष, उसीका पक्ष। लेकिन उसने अपनी पार्लमेंट में अपनी ही पार्टी के कुछ लोगों को निकाल करके विरोधी दल की बेंच पर बैठाया, उनका विरोधी पक्ष बनाया और कहा कि आप लोग निर्भीक होकर विरोध कीजिये। उस पार्टी को उसने कुछ नाम भी दिया। वही पार्टी बढ़ते-बढ़ते आज इतनी बलवान् हुई कि उस वक्त की सरकारी पार्टी की पिछले चुनाव में जबर्दस्त हार हुई और इन लोगों की, विरोधी पक्ष की जीत हुई। तो, एक सर्वोदय का विचार रखनेवाला, लोकनीति का विचार रखनेवाला, निष्पक्ष दृष्टि से काम करनेवाला व्यक्ति, ऐसा क्यों न कहे कि अगर यह पद्धति आपको चलानी है, तो उसे ठीक से चलाने के लिए यह आवश्यक है कि विरोध में एक सबल पक्ष होना चाहिए। मैं ऐसा मानता हूँ कि पण्डितजी कितने भी ऊँचे, अच्छे, बड़े हों, कितनी भी विशाल उनकी पार्टी हो, फिर भी इस चुनाव में, अगले चुनाव में, फिर उसी प्रकार से उनका बहुत बड़ा बहुमत होता है, तो कांग्रेस के लिए, देश के लिए वह बहुत खतरनाक है। यह मैं इसलिए नहीं कहता कि मैं प्रजा-समाजवादी पक्ष का सदस्य हूँ। एक नागरिक की हैसियत से और सर्वोदय-विचार को मानते हुए मैं मानता हूँ कि देश के लिए वह खराब होगा, घातक होगा।

अब इसमें एक सुधार का रास्ता बाबा सुझाते हैं। मुझे भी वह मान्य है। सुधार कोई एक ही तरह से हो सकता है, ऐसा मैं नहीं मानता। अगर बाबा का सुधार या रास्ता ये मान लें, तो फिर दूसरे ढंग से काम करने की जरूरत नहीं होगी। बाबा का सुझाव है कि पक्ष भिन्न-भिन्न होते हुए भी अच्छे-अच्छे लोग, सब दलों में जो सज्जन लोग हैं, वे इकट्ठे हो करके, निष्पक्ष भाव से देश की सेवा

में लग सकते हैं। उनके सुझाव का कांग्रेस पक्ष भी विचार कर रहा है। मैं नहीं जानता कि क्या उनका निर्णय होगा। अब तक उनके रुख मे वह बात मैं नहीं देखता हूँ। उस तरफ उनका झुकाव नहीं है। बाबा ने सुझाव दिया। जितने पक्ष हैं, उनमें से आप जिन लोगों को समझते हैं कि ये सज्जन लोग हैं, चाहे वे कम्युनिस्ट पार्टी में हों, चाहे जन-सघ में हों, प्रजा-समाजवादी पार्टी में हों या समाजवादी पार्टी में हों। जो अच्छे लोग हैं, ईमानदार लोग हैं, उनकी जगहों को 'मुक्त' छोड़ दो, उनके विरोध में अपना आदमी मत खड़ा करो। तो वे पहुँचेंगे वहाँ पार्लमेंट मे, तुम्हारे विरोध मे ही होंगे। लेकिन कम-से-कम तुम्हारा उनका एक जगह तो समान सबंध है। तुम सबमें यह समानता होगी कि वे भी अच्छे लोग हैं। अच्छे लोग देश को बुरा नहीं कर सकेंगे। विचार भिन्न होंगे। विचारों का आदान-प्रदान हो, लोकहित की कसौटी पर विचारों को कसो।

एक सुन्दर विचार है यह। हमारी दृष्टि मे, सर्वोदय की दृष्टि से, उपयुक्त विचार है। लेकिन अगर आपका आग्रह मौजूदा परिपाटी को ही चलाने का है, तो उस पद्धति को चलाने के लिए मैं बराबर कहता हूँ कि हर प्रणाली का अपना नियम होता है। अगर आप टेनिस खेलना चाहते हैं, तो क्रिकेट के नियम से उसे नहीं खेल सकते। अगर पार्लमेंटरी लोकतन्त्र का खेल पण्डित नेहरू, कांग्रेस या प्रजा समाजवादी अशोक मेहता या और कोई खेलना चाहते हों, तो उसके जो नियम है, उनके मुताबिक ही खेल सकते हैं। उन नियमों को छोड़ करके दूसरे नियमों को आप अपनाओ, तो हमें उसमें कोई एतराज नहीं होगा, हमे तो खुशी ही होगी, हम तो वह चाहेंगे।

बहुत से लोगों ने समझा कि यह आदमी तो नेहरूजी के खिलाफ भी बोल देता है। जरूर इसको कुछ स्पर्धा है, कुछ जलन है, यह उनको नीचा दिखाना चाहता है। सब कुछ कहते हैं। लेकिन नेहरूजी के लिए मेरे मन मे बड़ा प्रेम है, आदर है। जो भाव पहले था, उसमें कुछ घटती नहीं हुई है। मैं समझता हूँ, उनकी तरफ से भी नहीं हुई होगी। इधर तो मैं मिला नहीं बहुत दिनों से। लेकिन हम अपना कर्तव्य समझते हैं कि हमें बोलना चाहिए। नेहरूजी के हित

के लिए बोलना चाहिए। मैंने तो पटना फायरिंग के बाद पत्र में लिखा था कि ऐसा वक्तव्य देकर मैंने आपकी सेवा की है, ऐसी मेरी मान्यता है। उस पर वे जरूर नाराज हुए। व्यक्तिगत विचार-आचार के बारे में इतना निवेदन आपसे करना चाहता था। इसलिए नहीं कि आपका विचार मैं बदलना चाहता हूँ। वह फैसला हो गया है। उसको फिर से उठाने का प्रश्न नहीं है। कल व्यक्तिगत बातचीत में शंकररावजी ने, जो कुछ मैंने कहा उसके उत्तर में, बहुत ठोस और गम्भीर दलीलें और विचार दिये बहुत ही गम्भीर। आज आप उनके भाषण में उन दलीलों को सुनेंगे। लेकिन उनका सारा विचार सुनने के बाद भी मेरा विचार अपनी जगह पर रहा। इसलिए नहीं कि जो मैं कह रहा हूँ, उसका कोई उत्तर ही नहीं है या यहाँ कोई वाद विवाद उसके ऊपर चले। एक अधिकृत रूप से शंकररावजी उस विचार को रखेंगे सर्व-सेवा-संघ की तरफ से। शंकररावजी, दादा, धीरेन्द्र भाई, नायकमूजी सब बड़े लोग इस विचार को मान रहे हैं। बाबा का आशीर्वाद है। तो अब उसमें कुछ बदल करने की बात नहीं है। लेकिन आप इसे समझ सकें। इस परिवार से तथा दूसरे परिवारों से भी कुछ ऐसा सम्बन्ध रहा कि कभी कभी गलतफहमी होने से उसमें तफावत हो जाती है। सारे विरोधी दल और कम्युनिस्ट भी मिल करके, संयुक्त मोर्चा करके नहीं, बल्कि आपस में सीटों का बँटवारा करके चुनाव लड़ें, ऐसा एक विचार मैंने रख दिया, तो कांग्रेस के लोगों ने मेरा बहिष्कार कर दिया। मैं गढ़वाल भूदान-यात्रा के लिए गया, तो वहाँ सुना कि कांग्रेस के लोगों को ऊपर से ही कुछ हिदायतें आ गयीं कि इस आदमी की यात्रा में कांग्रेस को कोई भाग लेने की आवश्यकता नहीं है। अभी बम्बई गया, तो वहाँ भी यही सुना। मैंने तो स्वेच्छा से यह तय किया कि इसके लिए जीवनदान दूँगा। किसीने मुझसे कहा तो नहीं था कि कर दो। किसीने यह भी नहीं कहा था कि राजनीति में सक्रिय भाग मत लो, अगर अपने पक्ष के सदस्य रहो, तो भी उसकी राजनीति में मत पड़ो। मैंने अपनी बुद्धि से ये मर्यादाएँ अपने लिए बना लीं। मान लीजिये कि मैंने ऐसा नहीं किया होता और जैसे देबर भाई कांग्रेस का काम कर रहे हैं, वैसे मैं करता रहता, पी० एस० पी० का काम। तो फिर आप कहते कि यह आदमी पी० एस० पी० का काम करता

है, इसलिए भूदान के काम में आता है, तो कांग्रेसजनों को इसका बहिष्कार करना चाहिए? यह तो नहीं होना चाहिए। भिन्न-भिन्न लोग, भिन्न भिन्न दलों के लोग, आकर इस मञ्च पर और इस क्षेत्र में काम करें, यह नीति बराबर हमारी रही है। आपने इस पर बहुत जोर नहीं दिया कि पक्ष छोड़कर ही काम करना चाहिए। हालाँकि सर्व-सेवा-संघ के अन्दर पक्ष के सदस्य हों या न हों, यह जब प्रश्न आया था, तो हमने और श्रीमन्जी ने दोनों ने, हालाँकि हम दोनों अपने-अपने पक्ष के सदस्य हैं, यह राय दी कि इस संस्था में 'पक्ष के सदस्य' नहीं होने चाहिए। एक स्थान तो ऐसा होना ही चाहिए, जहाँ इन गुणों का परिपूर्ण विकास हो। तो वह ठीक है। लेकिन इस आन्दोलन में भिन्न-भिन्न पक्षों के लोग आ जायँ और मिल करके इकट्ठा काम करें, तो आज जो पक्षों में कटुता और लड़ाई होती है, पक्षों की जो दीवार बनी रहती है, चहारदीवारी रहती है, वह टूटेगी। यह भी हमारा एक उद्देश्य था कि भिन्न-भिन्न पक्षों के लोग आकर के यहाँ मिलेंगे, तो पक्षों के विघटन में इससे मदद मिल सकती है।

हमने जो कुछ वक्तव्य दिया, उसके सम्बन्ध में बहुत सारी बातें अप्रामाणिक, अनैतिक कही गयीं, आदि तरह-तरह की टीकाएँ हम पर हुईं। एक बात जो टीका में कही गयी, उसका उत्तर मैं दे देना चाहता हूँ। यह कहा गया कि साधन-शुद्धि में विश्वास रखनेवाला जयप्रकाश ऐसे पक्षों के साथ मिल करके और कुछ न हो, तो सीटों का बँटवारा ही सही, जो साधन-शुद्धि में विश्वास नहीं रखते हैं, काम कैसे करता है? इसका उत्तर दादा ने दिया था। इस प्रश्न का उत्तर नहीं, इस विचार का। आज जितने पक्ष हैं, उनके साधनों में कोई बहुत बड़ा अन्तर है, ऐसा हम नहीं मानते। कांग्रेस पक्ष का भी यदि यह आग्रह हो कि हम साधन शुद्धि का ही व्यवहार करते हैं, तो वह अहंकार है। पी० एस० पी० का अगर यह कहना हो कि हम इस तरह चलते हैं, तो वह उनका भी अहंकार ही है। काफी इसमें हम नीचे गिरे हैं। साधन-शुद्धि का किसीको दावा करने का आज मौका व्यक्तिगत रूप से हो, लेकिन पक्षगत रूप से किसीको नहीं है। कांग्रेस में भी साधन-शुद्धि वाले लोग हैं। दूसरे पक्षों में भी होंगे। मैं समझता हूँ कि कम्युनिस्ट पक्ष में भी कुछ लोग होंगे। इसी साधन

के विवरण में हिंसा-अहिंसा की बात आ जाती है। उस दिन तो राजाजी जैसे व्यक्ति ने हमसे कहा कि यह जो कम्युनिस्टों का हिंसा का मामला था, वह खतम हो गया। हिंसा में जो श्रद्धा उनकी थी कि हिंसा के द्वारा हम समाज में एक क्रान्ति करेंगे, वह चीज अब गयी भारतवर्ष से। राजाजी की बात से हमें आश्चर्य हुआ और कुछ हमारे पक्ष का समर्थन भी हुआ। सब पक्ष मिलकर कोशिश करें साधन-शुद्धि की। जो सबसे बड़ा पक्ष है, उसकी तरफ से कम-से-कम एक कदम आगे रखा जाय कि भाई, हम अच्छाई को पसन्द करते हैं, चले आओ। अच्छे-अच्छे जो लोग हैं, जिनको हम समझते हैं कि अच्छे हैं, उनका हम विरोध नहीं करेंगे। तुम्हारे साथ कोई समझौता करने की बात नहीं है। लेकिन इस एक गुण को हम बढ़ाना चाहते हैं। अब तक ऐसा नहीं हुआ। हृदयनाथ कुंजरू जैसे व्यक्ति, जो किसी पक्ष के सदस्य नहीं हैं, उनका भी विरोध कांग्रेस पक्ष की तरफ से हुआ। तो यह सोचने की बात है, आप सब लोगों के लिए।

पलनी (मदुराई)
२१-११-'५६

: २३ :

प्रस्ताव का आधारभूत सिद्धान्त

(शंकरराव देव)

प्रस्ताव का जो आधारभूत सिद्धान्त है, उसके बारे में मैं चन्द शब्द कहूँगा। सर्व-सेवा-संघ जनता में सामाजिक और आर्थिक तब्दीलियाँ लाने के लिए और एक नये सर्वोदय समाज की स्थापना करने के लिए सत्ता को साधन नहीं मानता। केवल रचनात्मक कार्य से पैदा की हुई जन-शक्ति के द्वारा ही हम व्यक्ति और समाज के मानस में परिवर्तन करेंगे, तो ही हम सर्वोदय या शासन-मुक्त समाज की स्थापना करने में सफल होंगे, ऐसी सब की श्रद्धा है। शुद्ध लोकशाही स्थापित करने का यही एक सीधा और सरल (डायरेक्ट) मार्ग है, ऐसी उसकी मान्यता है। आज पश्चिम से जिस लोकशाही को हमने स्वीकार किया

है, उसका जो आधार सिद्धान्त है, वही सदोष है। इसलिए पक्ष, चुनाव आदि जो उसका व्यावहारिक रूप है, वह भी अनिवार्य रूप से सदोष ही है। पश्चिम की आज की लोकशाही जो है, वह सत्ता के जरिये ही लोककल्याण सिद्ध करना अपना शाश्वत सिद्धान्त मानती है। 'जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए चलाया हुआ राज्य', लोकशाही की यह व्याख्या मशहूर है। इस व्याख्या में राज्य याने सत्ता गृहीत वस्तु है, तो भी पक्ष या पक्ष-पद्धति का जिक्र शुरू में नहीं है। यह ध्यान मे लेने जैसी चीज है। प्राचीन लोकशाही में पक्ष का अस्तित्व नहीं था। यूरोप म, अर्वाचीन युग मे, जब लोकशाही का "पूँजीवादी लोकशाही" के रूप में नया अवतार हुआ, तब उसके साथ-साथ ही पक्ष-पद्धति का जन्म हुआ है और पूँजीवाद के दोष से जब लोकशाही मुक्त हो जायगी, तभी पक्ष-पद्धति भी नष्ट हो जायगी और लोकशाही अपने शुद्ध स्वरूप में प्रकट होगी। लेकिन आज तो पक्ष-पद्धति लोकशाही का अविभाज्य अंग मानी जाती है और लोकशाही शुद्ध स्वरूप मे चलाने के लिए कम-से-कम दो पक्ष की जरूरत समझी जाती है। एक पक्ष सत्ताधारी और दूसरा पक्ष सत्ताविरोधी, क्योंकि शील-भ्रष्ट करना सत्ता का स्वाभाविक धर्म है। इसलिए सत्ताविरोधी पक्ष होगा, तो सत्ताधारी पक्ष सन्मार्ग पर रहेगा, ऐसा सर्वसाधारण तौर पर माना जाता है। इसी कारण इंग्लैंड में जो विरोधी पक्ष होता है, वह भी "हिज मेजेस्टीज अपोजिशन"—बादशाह का कहलाता है, और विरोधी पक्ष का जो नेता होता है, उसको सरकारी खजाने से वेतन मिलता है। अर्थात् जो सत्ताधारी पक्ष होता है, वही पैसे देकर अपने विरोध म एक पक्ष रखता है। क्योंकि दोनों ही "हिज मेजेस्टी" मे याने "सत्ता" म मानते है। इसी कारण विरोधी पक्ष सत्तारूढ होता है, तो भी "हिज मेजेस्टी" को कोई धक्का नहीं लगता। यूरोपीय लोकशाही मे जो विरोधी पक्ष है, वे सही माने मे सत्ताविरोधी या सत्ता का विसर्जन करने के लिए नहीं है। वे केवल सत्ताधारी पक्ष का विरोध करने के लिए है, लेकिन खुद सत्ताकाक्षी है। सत्ता हासिल होने तक सत्ताधारी पक्ष पर अकुश रखकर उसको सन्मार्ग पर रखना, यही उनका एकमेव काम है। इसी तरह दोनों पक्षों के लिए "हिज मेजेस्टी" याने सत्ता (पावर) देवता है और दोनों ही उसकी उपासना करते है।

लेकिन सर्व सेवा-संघ शासन-मुक्ति को मानता है और शासन-मुक्त समाज ही सच्चे माने में लोकशाही समाज हो सकता है, ऐसी उसकी धारणा है। जन-शक्ति के जरिये वह आज सच्ची लोकशाही निर्माण करना चाहता है। इस बात में हम गांधीजी से क्रांति-मार्ग पर एक कदम आगे बढ़े हैं। व्यक्ति कितना ही बड़ा हो, विभूति हो, तो भी उसके विचार और आचार पर उसके समय का कुछ न कुछ असर जरूर रहता है। कालनिरपेक्ष विचार और आचार केवल एक कल्पना है। आज की जो लोकशाही है, उसमें सत्ताधारियों पर काबू रखने की आवश्यकता गांधीजी भी मानते थे। लेकिन जिस बल से वे सत्ताधारियों को अंकुश में रखना चाहते थे, वह राजनैतिक बल नहीं था, वह नैतिक बल था। केवल एक सत्ताविरोधी पक्ष सत्ताधारी पक्ष को सही रास्ते पर रखने में पर्याप्त होगा, ऐसा वे नहीं मानते थे। विधायक काम के जरिये जो नैतिक बल पैदा होगा, वही सत्ताधारी पक्ष को काबू में रखने में सफल होगा, ऐसा वे मानते थे। दिसम्बर, १९४७ में देहली में विधायक कार्यकर्ताओं के साथ उनकी जो चर्चा हुई, उसका निचोड़ यही था। उनकी लोक-सेवक-संघ की जो कल्पना थी, उसमें सत्ता या राज्य (गवर्नमेंट) को गृहीत समझकर ही उसको रचनात्मक कार्य के द्वारा कंट्रोल करने की योजना थी। लोक सेवक-संघ का जो विधान उन्होंने बनाया था, उसमें ग्राम-सेवकों के भिन्न-भिन्न कामों की जो फेहरिस्त दी थी, उसमें मतदाताओं के रजिस्टर में हरएक गाँव के प्रौढ़ स्त्री-पुरुष का नाम दर्ज हुआ है कि नहीं, यह देखना भी एक महत्त्व का काम था। लोक सेवक संघ के विधान के अनुसार ग्राम-सेवक मतदाता का पथ-प्रदर्शक, मित्र और गुरु था।

भूदान-यज्ञ में जनशक्ति के सृजन या निर्माण का हम लोगों को ऐसा दर्शन हुआ है कि हम केवल नियन्त्रक "करेक्टिव" अवस्था से सृजनात्मक याने "क्रिएटिव" अवस्था को पहुँच गये हैं। आज की मिलावटी लोकशाही को नियन्त्रण में रखने के बजाय हम जनशक्ति के जरिये शुद्ध लोकशाही का निर्माण करेंगे, जिसको गांधीजी अहिंसात्मक लोकशाही (Non-Violent-democracy) कहते थे। जनशक्ति किस तरह पैदा की जाय, यह बात सबसे पहले गांधीजी ने ही हमें बतलायी। विधायक कार्यक्रम जो उन्होंने ही पहले हमारे

सामने रखा और आजादी हासिल करने में हमने उसका काफी उपयोग किया। आजादी की लड़ाई हमने अहिंसा से ही जीती। लेकिन आज भूदान-यज्ञ ने जन-शक्ति का जो नया दर्शन हमको करवाया है, वह उस समय नहीं हो सकता था, इसलिए आजादी की लड़ाई के बाद हम सत्ता हाथ मे लेंगे, लेकिन उसको विरोधी पक्ष अर्थात् राजनैतिक पक्ष की जगह हम जनशक्ति से याने नैतिक बल से काबू मे रखने की कोशिश करेंगे, ऐसा खयाल करने तक ही हमारी प्रगति गांधीजी के जमाने मे हुई थी। लेकिन सत्ता को काबू मे रखकर उसको नैतिक बल से शुद्ध करने की हम कितनी ही कोशिश करें, तो भी आखिर सत्ता तो शेष रहती ही है। और हमारा ध्येय है, शासन-मुक्ति तथा सच्ची समता। भूदान यज्ञ मे जनशक्ति का जो दर्शन हुआ है, उससे हममे यह श्रद्धा पैदा हुई है कि हम उसके शुद्ध स्वरूप मे भी सत्ता का उपयोग करना छोड़ देंगे और जनशक्ति के द्वारा याने अहिंसात्मक बल से सीधे शुद्ध लोकशाही का ही निर्माण करेंगे। शासनमुक्ति का और सच्ची समता का यही एक मार्ग दीखता है। लेकिन आज-कल "अहिंसात्मक मार्ग से" या "सत्याग्रह से" इन शब्दों के उपयोग से भी गलतफहमी फैलने का भय रहता है, क्योंकि इन शब्दों का भी कुछ अपना पूर्व इतिहास है। अहिंसात्मक प्रतिकार, असहयोग, सविनय कानून भंग, जेल मे जाना, यही इन शब्दों का हम खास अर्थ समझते है। इसी कारण बहुत-से लोग १९५७ के बाद के समय का इन्तजार कर रहे है। वे समझते है कि १९५७ मे भू-क्रान्ति न होगी, तो विनोबाजी सत्याग्रह शुरू करेंगे अर्थात् हम लोगों को अहिंसात्मक प्रतिकार करके जेल मे जाने के लिए आवाहन करेंगे। जब १९५७ के बाद, जैसा वे समझते है जेल जाने की पुकार होगी, तब जेल मे जाने के लिए वे तैयार है पर तब तक वे अपना काम करते रहेंगे। जब जेल जाना शुरू होगा, तभी भू-क्रान्ति का आरम्भ होगा, ऐसा वे मानते है। विनोबाजी आज भी सत्याग्रह ही कर रहे है, यह चीज उनके ध्यान मे नहीं आती। क्योंकि जिसे विनोबाजी सौम्य, सौम्यतर और सौम्यतम सत्याग्रह कहते है, उसे कार्यकर्ता और जनता अच्छी तरह से समझी नहीं है। इसलिए इन विषयों पर काफी प्रकाश डालने की और कार्यकर्ताओं को और जनता को शिक्षित करने की बहुत आव-

श्यकता है। १९५७ के सन्दर्भ मे यह सवाल अभी केवल "अकेडेमिकल' या तात्त्विक नहीं रहा है।

"करेंगे या मरेंगे" जो हमारा नारा है, उसको भी जरा दुरुस्त करने की जरूरत है। करना या मरना, इन्हे दो चीजें नहीं समझना चाहिए। एक अभी करेगा और दूसरा समय आयेगा, तब मरेगा, यह इसका अर्थ नहीं है। एक ही आदमी करते-करते मरेगा, यह इसके माने है। सौम्य, सौम्यतर और सौम्यतम सत्याग्रह के माने यही है। जब हमने यह खबर सुनी कि एक दिन प्रातःकाल विनोबाजी पदयात्रा को चले, लेकिन कुछ कदम आगे बढ़ने के बाद वे रास्ते मे ही बैठ गये, तो हमको आश्चर्य नहीं हुआ। इसका अर्थ यह हुआ कि वे चाहते थे कि आगे चलें, लेकिन शरीर ने इनकार किया। सभव है, वहाँ उनकी मृत्यु भी हो जाती। वह सौम्यतम सत्याग्रह का एक आदर्श नमूना हमारे सामने आ जाता। "करते-करते ही मर जाना" 'While doing die'—एक दिन विनोबाजी के बारे मे ऐसा ही हुआ, यह हम सुनेंगे, तो हमको ताज्जुब नहीं होगा। हाँ, ऐसा नहीं सुनेंगे, तो ही आश्चर्य होगा।

सारांश, इस प्रस्ताव के बारे मे हमको जो कहना था, वह यही था कि भूदान के गत पाँच साल के आन्दोलन मे हमको जनशक्ति का जो दर्शन हुआ है, उसके आधार पर सत्ता को नियन्त्रित करना छोड़कर हम शुद्ध लोकशाही का निर्माण करने का ही प्रयास करेंगे। हमारे कोश मे से अब "करेक्टिव" अर्थात् "नियन्त्रक" शब्द हट गया है और "क्रियेटिव" याने "निर्माता' यही शब्द रहा है। हमारे प्रस्ताव मे अमुक परिस्थिति को स्वीकार करके मतदान के बारे मे मतदाताओं को कुछ हिदायतें दी गयी है और उनसे कुछ अपेक्षा भी रखी है, यह बात सही है। वह कुछ हद तक एक समझौता है, ऐसा हम मानते है। आज की लोकशाही का रूपान्तर तानाशाही मे न हो और वह शुद्ध लोकशाही बने, इसलिए आज की लोकशाही का जो शास्त्र और तन्त्र है, उसमे विरोधी पक्ष की जरूरत मानी है। इसे ध्यान मे रखते हुए एक कदम और आगे बढ़कर हम आनेवाले चुनावों के बारे मे लोगों को कुछ सूचना करें, ऐसी कुछ मित्रों की राय है। सर्व सेवा-संघ की सुधार के बारे मे जो सैद्धान्तिक भूमिका है, वह इन मित्रों को पसन्द है।

लेकिन उस पर अमल करने का काल अभी दूर है, ऐसी उनकी राय है। सर्व सेवा-सघ के चुनाव-प्रस्ताव के बारे मे अभी जो कुछ सूचना दी गयी है, वह उसके सिद्धान्त की दृष्टि से समझौता है, यह बात सही है। क्योंकि हिंसावादी और साम्प्रदायिक उम्मीदवारो के बारे में चुनाव के समय मतदाता की कौन-सी भूमिका लेनी चाहिए, इस बारे में सघ के प्रस्ताव मे जो सुझाव है, वह विचार-परिवर्तन की शक्ति पर एक प्रकार की मर्यादा डालने जैसा ही है और उस हद तक वह सदोष है। लेकिन हमने एक समझौता किया है, इसलिए और आगे बढकर दूसरा समझौता भी करें और लोगों को एक मजबूत विरोधी पक्ष की आवश्यकता समझायें, यह हानिकारक साबित हो सकता है। चुनाव एक ऐसा मौका है, जिसका लाभ उठाकर सर्व-सेवा-सघ को अपने सिद्धान्त पर मजबूत रहकर जनता में उसका प्रचार करना ज्यादा लाभदायक होगा, ऐसी हमारी राय है। जिस शुद्ध लोकशाही के स्वरूप मे और उसको प्राप्त करने के लिए जिस केवल, शुद्ध वैचारिक क्रान्ति के मार्ग मे सर्व-सेवा-सघ की श्रद्धा है, उन तत्त्वों को ही सघ को जनता के सामने रखना चाहिए और उन पर ही जनता का शिक्षण करने का काम उसको करना चाहिए।

यह केवल चुनाव का ही सवाल नहीं है। भूदान-यज्ञ ने सारी जीवन-दृष्टि मे ही बुनियादी परिवर्तन किया है। उसके सदर्भ मे ही चुनाव के बारे मे हमारी नीति निर्धारित करना एक महत्त्व की चीज है। इस बारे मे हम समझौता करेंगे, तो उसका असर हमारी सारी जीवन-दृष्टि पर और भूदान के काम पर होगा। हम समझते है कि इस प्रस्ताव में शुद्ध लोकशाही को प्राप्त करने का जो शुद्ध वैचारिक क्रांति का रास्ता बतलाया गया है, उसी पर हम अटल रहेंगे, तो आखिर सबका ही हित होगा। क्योंकि यह केवल सर्व सेवा सघ या सर्वोदय समाज का ही सवाल नहीं है। देश के भिन्न-भिन्न राजनैतिक पक्ष और जनता जो स्वातन्त्र्य और समता चाहते है, उसका यही एक रास्ता है। इस मार्ग पर चलते हुए सबको साथ ले जाने की जितनी कोशिश हम कर सकें, उतनी करना हमारा धर्म है।

पलनी (मदुराई)
२१-११-'५६

: २४ :

उत्साहप्रद प्रस्ताव

(विनोबा)

सर्व-सेवा-सघ ने चुनावसम्बन्धी जो प्रस्ताव किया है, वह बहुत ही सुन्दर प्रस्ताव है। ऐसा प्रस्ताव कभी होता है, तो मुझ जैसे को बड़ा उत्साह आता है कि समझाने के लिए कोई चीज मिल जाती है। और यह प्रस्ताव ऐसा है कि उसमें बहुत बहस हो सकती है। याने चर्चा को उत्तेजन देनेवाला प्रस्ताव है। हम अगर वोट नहीं देते, तो क्या नागरिक के कर्तव्य की हानि नहीं होती ? अगर बहुत लोग हमारी बात मानेंगे, तो क्या गलत आदमियों के हाथ में कारोबार नहीं जायगा ? आदि-आदि कई प्रश्न आते हैं। उन सब प्रश्नों के बावजूद भी वह प्रस्ताव हमारे लिए बड़ा कल्याणकारी है। क्योंकि जितना मैं लोकनीति के विषय में सोच रहा हूँ, उसमें भी (चुनाव-प्रस्ताव से भी) इतना निश्चय हो जाता है कि आज की राजनीति को मान्य करके उसको तोड़ने के लिए जो जायँगे, वह उसको तोड़ेंगे नहीं। क्योंकि तोड़ने के लिए भी उसके बाहर नहीं रहेंगे, उसके अन्दर ही जायँगे। वृक्ष को तोड़ने के लिए वृक्ष के बाहर रहकर आप काटते है, तो बनता है। पर उस पर चढकर ही उसको तोड़ना चाहते है, तो तोड़ नहीं सकते। इसलिए तोडने के खयाल से भी उसके साथ जो सम्बन्ध जोडने की इच्छा होती है, वह अत्यन्त सूक्ष्मतम मोह है। मैं उसको निर्दोष मानने के लिए भी तैयार हो जाऊँगा।

बाहर से अधिक अंकुश

आज जिस हालत मे दुनिया है, उसको देखते हुए कल एक आस्ट्रिया के भाई को कुछ हमने समझाया, परन्तु उनको यह समझने मे मुश्किल हुई

कि बाकी का तो आपका यह सारा विचार ठीक है, परन्तु सारे समाज के परिवर्तन के लिए कहीं-न-कहीं सत्ता के केन्द्र मे हमारा अकुश अगर नहीं रहता, तो कैसे चलेगा ? इस अकुश की बात को तो हम बराबर मानते हैं, परन्तु हमारे मन की यह सफाई होनी चाहिए कि उस पर अकुश हम कुछ ज्यादा रख सकेंगे, अगर हम उससे अलग होंगे। एक भाई ने हमसे कहा कि पक्षीय राजनीति (पावर-पॉलिटिक्स) में आपकी न पड़ने की नीति के कारण यह हुआ है कि गलत काम जो दुनिया मे हो रहे हैं, उन पर टीका भी नहीं हो रही है। मैंने कहा कि बिल्कुल उल्टी बात है। उन पर टीका इसलिए नहीं हो रही है कि लोग पक्षों के अन्दर फँसे हुए हैं। क्योंकि जो बड़ा पक्ष है, वह तो अपने पक्ष की निष्ठा के वास्ते टीका नहीं करता। जो उसका विरोधी पक्ष है, उसकी टीका की कोई कीमत नहीं होती। जिसकी कीमत हो सकती है, वह टीका नहीं कर सकता, क्योंकि पक्ष के अन्दर पड़ा है और वही पक्ष काम कर रहा है। दूसरा पक्ष कभी टीका करता है, तो उसकी कीमत नहीं है। इसलिए टीका तो तभी उज्ज्वल होगी और तभी कारगर होगी, जब वह पक्षातीत होगी और लोकनीति की निष्ठा रखकर की जायगी। कारगर इस अर्थ में कि उसका नैतिक परिणाम होगा, चाहे व्यावहारिक परिणाम तात्कालिक न भी हो। मुझे अभी 'अप्पासाहब' का उदाहरण यहाँ याद आया। उनको जो कुछ लगा, उन्होंने इस एस० आर० सी० के मामले मे साफ तौर से कह दिया। उसकी बहुत विरोधी प्रतिक्रिया महाराष्ट्र मे हुई। उनके लिए महाराष्ट्र मे काफी आदर है। जिन दस पाँच व्यक्तियों के लिए आदर है, उनमे उनकी गिनती है। आदर के बावजूद भी बहुत विपरीत प्रतिक्रिया उनके उस कथन के प्रति हुई। फिर भी किसीकी हिम्मत नहीं पड़ी कि उसकी टीका 'असद्हेतु मूलक' है, ऐसा कहे। 'इनका अभिप्राय गलत है, वह महाराष्ट्र के लिए हानिकारक है, महाराष्ट्र-द्रोही हैं', यहाँ तक भी पढ़ा है। परन्तु यह टीका कि उसके मूल मे 'असद्हेतु' है, किसीने नहीं कहा। इसका बहुत बड़ा नैतिक असर होता है, चाहे तात्कालिक असर न भी दीख पड़े। कुछ वातावरण जरा शान्त होने के बाद उसका असर जरूर होता है। तो, इस वास्ते इस विषय मे एक चिन्तन हम आपके सामने रख रहे हैं कि इलेक्शन के बाद हम अपने कार्यकर्ताओं की ऐसी रचना करें कि

हमारी तरफ से जो भूदान-समितियाँ बनानी हैं, हमारी तरफ से अगर बनानी हों, तो सर्व-सेवा-संघ के लिए हमने जो आदर्श रखा है, उसी नीति को, उसी आदर्श को और उसी लोकनीति को कबूल करनेवाले लोग ही उनमें रहें। बाकी के सब लोगों का सहयोग हम लेते रहें, वही मैंने यहाँ लिख रखा है।

लोकनीति के साथ सर्व-सम्मेलन

लोकनीति के साथ सर्व-सम्मेलन भी होना चाहिए। यह उसीका एक अंग है। आजकल ऐसा होता है कि बाबा पर भी कभी-कभी कोई आक्षेप लेता है। ज्यादा नहीं लेते, लेकिन कोई-कोई लेता है। कहता है कि बाबा का तो मेला है, गुजराती शब्द है, 'समूल मेला'। याने 'समूल' की बारात में जैसे सब प्रकार के लोग थे भूत, पिशाच, प्रेत आदि, वैसे ही सब प्रकार के लोग इस जमात मे है। कोई पी० एस० पी० वाला होता है। यहाँ तक कि कम्युनिस्ट भी होता है। जनसंघी भी एकआध होता है।

अब कुछ लोगों को लगता है कि ऐसे गलत लोगों का सहयोग लेने से अपने कार्य की अशुद्धि होती है। तो, हम दो तरह से अभी सोच रहे हैं। एक तो हम जिसको अपनी तरफ से नियुक्त कार्यकर्ता समझेंगे या इस आन्दोलन के जो मूलाधार होंगे, उनकी लोकनीति मे निश्चित निष्ठा होनी चाहिए। यह हम अपेक्षा करते हैं। इसके साथ-साथ हम यह भी करेंगे कि सब लोगों को हृदय-परिवर्तन का मौका मिले, सब पक्षों के लोगों को इसमे दाखिल होना है और दाखिल होने के लिए हम बिल्कुल अवकाश दें। हिंसा मे अहिंसक मनुष्य को सहन करने की शक्ति नहीं है। वह अहिंसक मनुष्य को सहन नहीं करेगी। पर अहिंसा मे हिंसक मनुष्य को सहन करने की शक्ति होनी चाहिए। स्टेट अगर हिंसक होगी, तो सम्भव है कि अहिंसक लोगों पर ही पाबन्दी रखे और उनको खुले-आम बोलने के लिए मुक्ति देना, अवकाश देना, मौके पर खतरनाक भी मानेगी और बोलने से रोकेगी भी। लेकिन अगर अहिंसक स्टेट है, तो हिंसा का प्रचार जो भी करना चाहता है, उनको प्रचार करने की पूरी आजादी मिलेगी। जितने व्याख्यान करने हैं, जितने लेख लिखने हैं, जितने ग्रन्थ लिखने हैं, सब लिखें,

किसी ग्रन्थ को हमारी स्टेट की तरफ से बन्धन नहीं होगा। जिसमें हिंसा का मण्डन किया हो, तभी अहिंसा खुलेगी। इसलिए ऐसे हिंसक लोग अगर हैं, जिनको हम हिंसक अपने अहंकार से ही मानते है। हम हिंसा का विचार मान्य न करें, यह अलग बात है। लेकिन उनको हिंसक मान करके उनसे सम्बन्ध ही टालना, जैसे पुराने ब्राह्मणों का एक खास छूत-अछूत का भेद चलता है, वह वृत्ति हमारी नहीं होनी चाहिए। इसमे मैं बिल्कुल निःशंक हूँ और बहुतों को इसमें भ्रम है और लोग बोलनेवाले थोड़े हैं, बोलते हैं, ज्यादा नहीं बोलते हैं, लेकिन भ्रम बहुतों का है। वे कहते हैं कि इसमें हम भूदान-आन्दोलन को क्षति पहुँचा रहे हे। हम भी मानते हैं कि इस आन्दोलन का मुख्य सचालन ऐसे लोगों के हाथ में, जो कि भिन्न-भिन्न पक्षों मे हैं और भिन्न-भिन्न तरीकों को मानते है। कुछ हिंसा में भी मानते होंगे इत्यादि होगा, तो हमारे आन्दोलन को खतरा है, ऐसा हम मान सकते हैं। अभी तो कुछ हमने इसका भी सहन कर लिया था—भूदान-समितियों के बनाने में। एक-डेढ साल पहले मैंने कह दिया था कि इसको तोड़ो और नये सिरे से होने दो। फिर हम बना लेंगे, स्वच्छ कोरा कागज हो जायगा, तो फिर लिखना शुरू करेंगे, ऐसा सुझाया भी था। तो वह सबको मान्य नहीं हुआ था। लेकिन आगे के लिए हमारा मन साफ होना चाहिए। हम अपने काम मे सबका सहयोग लेने के लिए राजी हैं। समुद्र किसी भी नाले को स्वीकार करने से इनकार नहीं करता। वह यह नहीं कहता कि शुद्ध नदी ही इसमें आये और गन्दा पानी-वाला नाला इसमें न आये, यह समुद्र नहीं कहता। तो, हमारा अगर जन-आन्दोलन है, अहिंसा का आन्दोलन है, तो अहिंसा मे सबको पचा लेने की शक्ति होनी चाहिए। उनको ग्रहण करना है, उनको मौका देना है। समुद्र मौका देता है नाले को, तो अपना सारा रूप उसको देता है। याने अपना रूप देने के लिए उसको स्वीकार करता है। उसमें हिम्मत है। वह कहता है कि अगर तू आयेगा, तो मेरे रूप में क्या फर्क पड़ेगा ? अपना ही रूप मैं तुझको दूँगा, इसलिए अहिंसा मे यह हिम्मत होनी चाहिए कि वे लोग आयें, तो भी कोई हर्ज नहीं। इसलिए मैंने एक मिसाल दी थी कि अगर हमारी पटरी सतोगुण—अहिंसा की है, तो बस बात खतम हो गयी। फिर बीच मे डिब्बे, इंजन वगैरह चाहे जो हों, उनमें रजोगुण आये,

तमोगुण आये, हमको चिन्ता नहीं, लेकिन उस पटरी मे कहीं दोष नहीं होना चाहिए। वह ठीक दिशा मे जानी चाहिए। पर ऐसे सब लोगो का सहयोग हमको लेना है। उनको मौका देना है। मान लीजिये कि मैं अगर हिन्दुस्तान की बड़ी पार्टी का मुख्य होता, ऐसी पार्टी, जिसके लोग कुश्ती करना चाहते है, परतु कुश्ती के लिए सामने मल्ल ही नहीं मिल रहा है, मुख्य फिक्र यह नहीं है कि सामने कोई ऐसा मल्ल है, जो कि हमको उखाड देगा। बल्कि यह फिक्र है कि कुश्ती का खेल ही शायद न हो याने कुछ लड़ने को मिलता ही नहीं है। ऐसी पार्टी का अगर मै मुखिया होता, तो मै जाहिर कर देता कि मैं सब पक्षों के अच्छे लोगो का सहयोग चाहता हूँ। अच्छे लोग याने जिनमें इन्ट्रीग्रिटी है। क्या कहेंगे, इसको सच्चाई। सचाई याने हिंसावाले है, तो भी वह सच्चाई की हिंसा मे मानते हैं। यह भी एक सच्चाई है। याने कम्युनलिस्ट हैं, तो भी सच्चे दिल से उसमें मानते हैं। वह भी सच्चाई है। इस तरह एक-एक गुण नहीं कहूँगा और ऐसे जितने लोग है, उनमें मे मै चुनूँगा। फलाने-फलाने मनुष्य के खिलाफ किसी मनुष्य को कांग्रेस-कमेटी से खड़ा नहीं करूँगा। जो उनमें से ऐसे लोग होंगे, जो कुछ विचार पेश कर सकते हैं, चाहे वह कितना ही गलत विचार हो, तो भी उनके पीछे कुछ तो है ही। रिप्रेजेन्टेटिव तो हैं ही वे किसी-न-किसी विचार के। ऐसे लोगों को उनकी पार्टी-वालों से पूछ करके नहीं कि आपका कौन मनुष्य होगा, जिसके खिलाफ हम मनुष्य न खड़ा करें, ऐसा आप चाहते है क्या ? ऐसा पूछ करके नहीं। पर मैं ही नाम ले लूँगा और उसमे जनसघवाले का भी नाम लूँगा, जो कि बिलकुल बदनाम माना जाता है। कम्युनिस्ट पार्टी का नाम लूँगा और भी कोई होंगे, जो मुख्य होंगे, अपने दल के माने हुए मुख्य नहीं, बल्कि लोगों में ही जिनके लिए विश्वास है। जैसे जिन्ना के बारे मे महात्मा गाधीजी हमेशा कहते थे कि उस शख्स में जो भी दोष हों, जो भी गुण हो, चर्चा करें करनेवाले, लेकिन वह मनुष्य खरीदा नहीं जायगा, ऐसा कहते थे। तो इस तरह से जो खरीदे न जानेवाले लोग होंगे, चाहे किसी पार्टी के हों, ऐसे कुछ लोगों को मैं आने दूँगा पार्लियामेंट में और कहूँगा कि उनके खिलाफ मुझे किसीको नहीं खड़ा करना है। तो कुश्ती के लिए मल्ल की जो न्यूनता दीख रही है, उसकी पूर्ति भी होगी। आयेंगे, दस-पाँच लोग।

यह कोई मै उन लोगों (बड़ी पार्टीवालों) को सुझाव देने के लिए नहीं कह रहा हूँ, उनके लिए मेरे पास कोई सुझाव नहीं, क्योंकि सुझाव करने का अधिकार मुझे नहीं है, अधिकार उसीको होता है, जो उस काम मे पड़कर उसकी जिम्मेवारी को उठाता है। मेरा तो यह सारा गैर जिम्मेदाराना वक्तव्य है, तो इसलिए इस वक्तव्य मे उनको सुझाव देने की कोई गुजाइश नहीं। पर मैं तो केवल एक प्रकट चिन्तन अपने लिए कर रहा हूँ कि अपनी तो कोई मिनिस्ट्री है ही नहीं। परतु यह अपना एक कार्य है, उस कार्य में भिन्न-भिन्न पक्षों के लोग, जो इस कार्य को सच्चाई से मानते होंगे, आना चाहते हो, चाहे उनके माने हुए विश्वास हिसा के हों, अहिंसा के हों, ईश्वर-निष्ठा के हों, नास्तिकता के हों, जैसे भी हों, उन सबको हम मजूर करेंगे। यह हमारी वृत्ति होनी चाहिए एक बाजू से और दूसरी बाजू से हमारे आन्दोलन के मूल सेवक जो हम मानेंगे और ऐसे मूल सेवक कोई दस-बीस नहीं होने चाहिए, बल्कि लाख-लाख की तायदाद मे होने चाहिए, वे लोकनीति मे पूर्णतया माननेवाले होने चाहिए।

पलनी
२२-११-'५६

[तीसरा भाग]

(प्रश्नोत्तर)

: २५ :

अप्रत्यक्ष चुनाव और प्रचार

(विनोबा)

प्रश्न :—"आपने Indirect elections (अप्रत्यक्ष चुनाव) की बात कही है। आगामी चुनाव में हम उस विचार को किस प्रकार लोकप्रिय बना सकते हैं ?

विनोबा :—आगामी चुनाव में वह नहीं होगा, उसके बाद भी होगा या नहीं, हम नहीं कह सकते। हमारा भी एक Politics (राजनीति) है, याने हम Innocent (भोले) नहीं हैं। हमारी राजनीति आज तक की राजनीति को तोड़नेवाली है। इसलिए हमारा एक समाज बनाना पड़ेगा और हमारे विचारों की दृढता अपने समाज में बनानी पड़ेगी। हमें यह दिखाना होगा कि दुनिया का कोई भी मसला हम अहिंसा से हल कर सकते हैं। उसके बाद ही हमारा यह राजनैतिक विचार सुनने के लिए लोग तैयार होंगे। तब तक हमारी गिनती मूर्खों में होगी, आज भी है। यह समझ लेना चाहिए और उस पदवी को हमें सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। भूदान, अम्बर चरखा, नयी तालीम जैसी कोई चीज देश में करके दिखानी चाहिए और तब तक आज के Politics की तरफ देखना ही नहीं चाहिए। अगर हम इन ४-५ सालों में वैसी कोई चीज करके दिखायेंगे, तो फिर हमारा असर राजनीति पर होगा। आज जो थोड़ा-सा असर दीख रहा है, उसका कारण यह है कि हमारा काम थोड़ा-सा चल रहा है। याने परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू हुई है। आप देख रहे हैं कि दिन-ब-दिन खादी-बोर्ड के लिए अनुकूलता निर्माण हो रही

है, जमीन के बटवारे के बारे में कुछ-न-कुछ सोचा जा रहा है, राजनीतिज्ञ भी अप्रत्यक्ष चुनाव के बारे में बोल रहे है। अगर हमारा काम वेग से चला, तो वह परिवर्तन की प्रक्रिया भी वेग से चलेगी। लेकिन आज हम अपनी शक्ति दूसरे-तीसरे कामो में खोते है, एकाग्र नहीं होते है। हमारा विश्वास है कि भूदान आदि कामों के जरिये हम जो क्रान्ति लाना चाहते है, उसका थोडा भी जोर चलेगा, तो हिंदुस्तान की राजनीति पर हम असर डाल सकते है।

गाधीनगर, तिरुपुर
१८-१०-'५६

: २६ :

चुनाव-प्रस्ताव से उठनेवाले प्रश्न

(धीरेन्द्र मजूमदार)

प्रश्न —राज्य-विघटन का जो सकेत आपने अपने चुनाव-प्रस्ताव-सबधी लेख मे किया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य-विघटक लोग राज्य-सघटन के काम मे सहयोग नहीं दे सकते। परन्तु जब तक राज्य-शासन है, जनता जब तक शासनाधीन है, तब तक उसका सम्बन्ध राज्य के साथ कैसा रहेगा? क्या शासन के नियन्त्रण और उसके विघटन के लिए भी उसके निर्माण मे कुछ हिस्सा नहीं लिया जा सकता? निर्माण मे मतलब सत्ता लेने से नहीं, चुनाव या अन्य किसी पद्धति से है।

राज्य-विघटन बनाम सघटन

उत्तर —यह तो स्पष्ट है कि जो लोग राज्य का विघटन करना चाहते है, वे राज्य के सघटन मे दिलचस्पी नहीं लेंगे। और यह भी स्पष्ट है कि जब तक कि विघटन की चेष्टा सफल नहीं होती है, तब तक राज्य द्वारा ही समाज का सचालन होता रहेगा और विघटन की चेष्टा करनेवाले भी अनिवार्यतः उस शासन के नीचे रहेंगे। हम जब विदेशी राज्य को विघटित करने की चेष्टा करते थे, उस समय भी जब तक विदेशी राज्य का विघटन नहीं हुआ था, तब तक हम उन्हींके शासनाधीन

रहे थे। फर्क इतना ही होगा कि उस समय हमारा सम्बन्ध उसके साथ असहयोग तथा संघर्ष का था, अब हम उसके प्रति उदासीन रहेंगे।

शासन के नियन्त्रण में हिस्सा लेने का मतलब शासन में भाग लेना ही है। वस्तुतः मनुष्य उसी चीज को नियन्त्रण में रखने की कोशिश करता है, जिसे वह रखना चाहता है, जैसे कि पार्लियामेंट के विरोधी दल, जो शासन-व्यवस्था पर अपना नियन्त्रण रखना चाहते हैं। इसका मतलब यह है कि वे शासन-व्यवस्था को कायम रखना चाहते हैं। वस्तुतः शासन का नियन्त्रण करनेवाला विरोधी दल, शासन का अंग हो जाता है। यही कारण है कि इंग्लैंड के विरोधी दल के नेता को राज्य-कोष से वेतन मिलता है।

तो विघटन के लिए ही निर्माण-कार्य में कुछ हिस्सा लेना सम्भव नहीं है। हाँ, विघटन के लिए राजकीय कार्यक्रम में कहीं-कहीं सहयोग किया जा सकता है। शर्त यह है कि वह कार्यक्रम विघटन के उद्देश्य की सिद्धि में हो। मिसाल के तौर पर देश की बेकारी की समस्या हल करने के लिए राज्य की ओर से खादी-ग्रामोद्योग का कार्यक्रम चालू किया गया है। यह काम जहाँ बेकारी की समस्या को हल करता है, वहाँ ग्राम के स्वावलम्बन-संकल्प में भी मदद करता है। देहाती जनता जिस हद तक अपनी शक्ति से स्वावलम्बी हो सकेगी, उस हद तक राज्य की आवश्यकता नहीं रहेगी। अतएव ग्राम-राज्य के विचार-प्रचार के साथ अगर सरकार द्वारा प्रसारित खादी तथा ग्रामोद्योग का काम चलाया जाय, तो राज्य-विघटन के काम में मदद मिल सकती है। उस हद तक सरकारी कार्यक्रम से सहयोग भी किया जा सकता है।

प्रश्न :—"हमारा सम्बन्ध विदेशी राज्य से असहयोग का था और आज की राज्य-पद्धति में उदासीनता का", यह फर्क समझ में नहीं आया। क्या इस राज्य-पद्धति से असहयोग की आवश्यकता नहीं होगी?

उदासीनता और असहयोग

उत्तर :—उदासीनता असहयोग का ही सौम्यतर स्वरूप है। आपको मालूम होगा कि हिंसक शक्ति जितनी विराट् होगी, उतनी ही वह अधिक शक्तिशाली भी

होगी। उसी तरह अहिंसक सत्याग्रह जितना सौम्य होगा, उतना ही वह अधिक शक्तिशाली भी होगा। अंग्रेजी राज्य विघटन की चेष्टा से हम राज्य-पद्धति या संस्था का विघटन करने की कोशिश नहीं करते थे, बल्कि राज्य-संस्था का संचालन विदेशियों के हाथ से अपने देशवालों के हाथ में लाना चाहते थे। वह काफी छोटा काम था। तब स्थूल असहयोग से काम चल गया था, लेकिन आज हम राज्य-संस्था को ही विघटित करना चाहते हैं। इसके लिए सामान्य असहयोग काफी नहीं होगा। इसलिए हम सूक्ष्मतर यानी सौम्यतर असहयोग अर्थात् सचेतन-उदासीनता की बात करते हैं।

प्रश्न :—अप्रत्यक्ष चुनाव-पद्धति के सुझाव के द्वारा आपने मौजूदा परिस्थितियों के साथ कुछ समझौता किया है, ऐसा प्रतीत होता है। यह समझ में नहीं आया। फिर अप्रत्यक्ष चुनाव में से हम शासनमुक्ति की ओर किस प्रकार बढ़ सकेंगे, यह प्रश्न भी शेष रह जाता है।

अप्रत्यक्ष चुनाव से शासन-मुक्ति

उत्तर :—अप्रत्यक्ष चुनाव-पद्धति के सुझाव के माने यह नहीं है कि अगर ऐसा हो जाय, तो हम उसमें शामिल होंगे। यह सिर्फ आज के चुनाव के विनाशकारी नतीजे को कुछ अंश तक शान्त कर सकता है। यह सुझाव उनके लिए है, जो शासन-पद्धति को मानते हैं, जिस तरह कि सर्व सेवा-संघ के मूल प्रस्ताव में भी जो लोग चुनाव में भाग लेना चाहते हैं, उनके लिए कुछ सुझाव पेश किये गये हैं।

अप्रत्यक्ष चुनाव से शासन-मुक्ति के काम कुछ हल हो सकते हैं, क्योंकि उससे नीचे की इकाई की जनता में कर्तृत्व भावना का बोध जाग्रत हो सकता है, जिससे शासन-मुक्ति के विचार समझाना आसान हो जायगा, क्योंकि शासन-मुक्ति का मूल आधार जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से कर्तृत्व का बोध ही है।

प्रश्न :—आपने उदासीनता को असहयोग का "सौम्यतर तथा शक्तिशाली रूप" बताया है। असहयोग की बात तो समझ में आती है, उसमें एक सक्रिय कार्यक्रम रहता है, पुरुषार्थ की गुंजाइश रहती है। उदासीनता तो निष्क्रिय भावना

है, उसमें मनुष्य का पुरुषार्थ निखरता नहीं। इससे वह तो फलवती ही नहीं होगी, शक्तिशाली तो होना दूर रहा। क्या इस प्रकार से देश के लोग पुरुषत्वहीन नहीं हो जायँगे?

उत्तर :—अगर आप मेरी प्रश्नोत्तरी को ध्यान से पढ़ेंगे, तो मालूम होगा कि मैने समझ-बूझकर उदासीनता के साथ "सचेतन" शब्द जोडा है। उदासीनता ठीक उसी तरह से जड़ और चेतन, दोनो हो सकती है, जिस तरह असहयोग भी जड और चेतन, दोनों हो सकता है। चूँकि गाधीजी ने चेतन असहयोग का सगठन किया और हमने उसको देख लिया, इसलिए उसकी सक्रियता समझ मे आती है। लेकिन शुरू में बड़े-बड़े विचारकों ने भी गाधीजी के असहयोग को ठीक उसी तरह निष्क्रिय तथा नकारात्मक समझा था, जैसे आप उदासीनता को समझते है।

इतना तो आप समझते ही है कि अहिंसक क्राति, निर्विरोध भावना के विकास से ही हो सकती है। आप जब असहयोग की बात सोचते हैं, तो उसमें परोक्ष रूप में विरोध की भावना आ जाती है। लेकिन उदासीनता मे उतना भी विरोध नहीं आ पाता। इसलिए मैंने कहा कि आजादी जैसी छोटी चीज के लिए असहयोग से काम चल सकता था, लेकिन अब अधिक शक्तिशाली असहयोग के लिए अधिक निर्विरोध रूप चाहिए। फिर हम जिससे असहयोग करते हैं, उसकी महत्ता को तसलीम करते हैं, लेकिन जिस चीज से हम उदासीन रहते हैं, उसकी महत्ता को ही हम इनकार कर देते हैं। अगर शासन के अस्तित्व को हम महत्त्व की वस्तु मान लेते हैं, तो हमारी निष्ठा उसके विघटन मे कम पड़ जाती है। अगर मान लेते है कि स्वतत्र लोकशक्ति ही सब कुछ है, तो हमें अपनी सर्वांगीण दृष्टि तथा शक्ति उसीके सगठन तथा समाज-व्यवस्था मे उसका उपयोग करने में लगाने की आवश्यकता है। फिर मौजूदा राज्यशक्ति के प्रति उदासीनता सहज ही आ जाती है।

उदासीनता से यह मतलब नहीं है कि चुपचाप घर बैठे रहे। हमे सक्रिय उदासीन बनना है। अर्थात् हमें जनता मे उदासीनता की भावना का प्रचार तथा सगठन करना है, ताकि स्वतत्र लोकशक्ति, राज्यशक्ति के प्रति उदासीन रहते हुए अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा व्यवस्था करके नित्य जीवन मे राज्य के

अस्तित्व को ही भूल सके। यह एक विचार है, जिसके सक्रिय कार्यक्रम से शोध करने की आवश्यकता है। वस्तुतः आज के बहुसख्यक विचारक शासनहीन राज्यमुक्त समाज का विचार रखते हैं। वे इस विचार को मानते हैं कि राज्य-सस्था अत में सूख (wither away) जायगी, लेकिन प्रश्न यह है कि वह हो कैसे ?

जब तक मनुष्य के मानस मे कोई वस्तु भरपूर रहती है, तब तक वह चीज लोक-समाज में सूख नहीं सकती। मनुष्य का मन तथा दिमाग ही मुख्य वस्तु होता है। जिसके दिमाग में पीपल के पेड़ पर भूत रहता है, उसके लिए उस पेड़ पर वास्तविक भूत भी रहता है, और वह उसे प्रत्यक्ष भी करता है। जो चीज नहीं है, वह दिमाग मे आते ही प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हो जाती है, तब जो चीज है, उसे सुखाने के लिए क्या यह आवश्यक नहीं है कि हम पहले उसे दिमाग से ही सुखा डाले और समाज का काम उससे उदासीन रहकर ही चले, ऐसा प्रयास करें ?

केवल असहयोग से अन्याय का प्रतिकार तो होता है, लेकिन समाज की पुरानी शक्ति के स्थान पर नवशक्ति का निर्माण मुश्किल है, क्योंकि असहयोग करनेवाली जनता की सारी शक्ति उसी कार्यक्रम मे लग जाती है और उसमें रचनात्मक प्रवृत्ति की गुजाइश कम रहती है। जहाँ असहयोग का कार्य खुद ही एक कार्यक्रम है, वहाँ उदासीनता अपने-आप कोई ऐसा कार्यक्रम नहीं है, जिसमे जनता की शक्ति उसीमे खर्च हो, बल्कि उससे जनता का सारा ध्यान दूसरी ओर मे खिचकर विशिष्ट शक्ति के निर्माण मे लग जाता है। इस तरह सक्रिय उदासीनता सृजनात्मक कार्यक्रम होती है, क्योंकि वह राज्य-शक्ति की तरफ उदासीन रहकर पूरी ताकत प्रत्यक्ष जनशक्ति के निर्माण तथा उसके व्यवस्थित उपयोग मे लगा देती है। अतएव आपकी जो शका है कि उदासीनता के कार्यक्रम से देश के लोग पुरुषत्वहीन हो जायँगे, वह निर्मूल है।

गाढ़ीग्राम
८-११-'५६

: २७ :

'बहुमत' बनाम 'सहमति'

(धीरेंद्र मजूमदार)

प्रश्न :—सर्व-सेवा-संघ के चुनाव-प्रस्ताव पर आपकी टिप्पणी देखी। आपने प्रस्ताव का स्पष्टीकरण करके बहुत-सी शंकाओं का निवारण किया है। लेकिन आपने जो यह कहा है कि राजनीति के स्थान पर लोकनीति होनी चाहिए और लोकनीति में बहुमत के स्थान पर सर्वसम्मति से निर्णय-पद्धति ही होनी चाहिए, यह बात समझ में नहीं आती। आखिर यह कैसे सम्भव होगा कि सबकी एक ही राय हो! यह तो एक स्वप्न-राज्य में विचरण करना हुआ। चूँकि सब लोग एक राय के नहीं हो सकते, इसलिए व्यावहारिक राजनैतिक व्यक्तियों ने बहुमत का आविष्कार किया। मुझे सर्व-सम्मति की बात अव्यावहारिक मालूम होती है।

उत्तर :—हाँ, अधिकांश लोगों को यह बात अव्यावहारिक मालूम होगी, क्योंकि अब तक लोग बहुमत के सिद्धांत के अनुसार ही काम करते रहे हैं। जब "राजतन्त्र" के स्थान पर "वोटतन्त्र" की बात चली थी, तब भी आम लोगों ने उसे अव्यावहारिक ही समझा था। पार्लमेण्ट-प्रथा के जन्मदाता मुल्क, इग्लैंड ने भी अभी तक राजा को कायम ही रखा है। वस्तुतः जिस दलील के कारण सर्वसम्मति सम्भव नहीं है, उसी दलील के कारण बहुसंख्यक लोगों का भी एक-मत होना सम्भव नहीं है। चूँकि प्रकृति में कोई दो वस्तुएँ हूबहू एक-सी नहीं होती हैं और चूँकि मनुष्य भी प्रकृति का ही अंग है, इसलिए किन्हीं दो व्यक्तियों का मत हूबहू एक नहीं हो सकता। सृष्टि के शुरू से आज तक जितने मनुष्यों का जन्म हुआ है, उनमें से किन्हीं दो मनुष्यों के अंगूठों के निशान तक एक-से नहीं हुए हैं। इसलिए आधे से अधिक व्यक्ति एक-मत के होंगे, यह सोचना भी गलत है। वस्तुतः जब एक पार्टी बहुमत की होती है, तो विभिन्न कारणों से उसके सदस्य

एक साथ हो जाते है। इस "एकमत" का नियामक पक्ष-प्रतोद ("Party whip") होता है। इस तरह आप जिसे बहुमत का राज्य कहते हैं, वह अन्तगत्वा दलपति के एकतन्त्रवाद मे परिणत होता है। अतः आप यह न समझें कि हम इस बात को नहीं जानते हैं कि सब लोग एक राय के नहीं होते हैं, बल्कि हम उससे कुछ अधिक यह जानते है कि बहुसख्यक भी एक राय के नहीं होते है। इसलिए हम "सर्वसम्मति" के स्थान पर 'सर्वसहमति' कहते हैं। दो व्यक्तियों मे आपस में सम्मति है, ऐसा तब कहा जायगा, जब दोनों की राय एक हो। पर समाज मे ऐसी स्थिति का निर्माण किया जा सकता है, जब एक-मत न होने पर भी एक-दूसरे के साथ चलने की वृत्ति हो सकती हो। उस समय एक व्यक्ति दूसरे की राय का साथ देता है। इसे "सहमति" कहते हैं। जैसे-जैसे समाज का सांस्कृतिक स्तर ऊँचा होता जायगा, वैसे-वैसे "सर्व-सहमति" की परिस्थिति बढ़ती जायगी। आज भी हमारा पारिवारिक और सामाजिक जीवन सरकार के कानून की तुलना मे अधिक परस्पर-सहमति के ही आधार पर चल रहा है। समाज मे सर्वसहमति का विचार जैसे-जैसे आगे बढ़ेगा, वैसे-वैसे सांस्कृतिक स्तर भी ऊँचा उठेगा। इस तरह दोनों ही चीजें एक-दूसरे के विकास का कारण होती हैं। यही कारण है कि विनोबाजी एक ओर से जन्म से मृत्यु तक मनुष्य की प्रत्येक हरकतों को शिक्षा का माध्यम बनाकर सामूहिक रूप से समाज के सांस्कृतिक विकास का कार्यक्रम बनाते हैं और दूसरी ओर से प्रतिद्वन्द्विता-मूलक बहुमत के स्थान पर सर्व-सहमतियुक्त निर्णय पर जोर देकर लोकमानस मे सांस्कृतिक विकास की भूमिका तैयार कर रहे हैं।

एक जमाना था, जब मनुष्य इस बात को सोच ही नहीं सकता था कि जनता आपस मे मिलकर राज्य चलानेवाले को चुन सकती है। वह स्वप्न मे भी यह नहीं सोच सकता था कि आम जनता मे भी ऐसी शक्ति आ सकती है। उस समय राजतन्त्र चलता था। विभिन्न देशों मे विभिन्न प्रकार से लोग यह मानते थे कि मानव की सुशृंखलता कायम रखने के लिए राजा के रूप में किसीको स्वर्गलोक से भेजा गया है। "**महती देवता राजा नररूपेण तिष्ठति**", यह समाज की धारणा थी। जैसे-जैसे मनुष्य का बौद्धिक तथा सांस्कृतिक स्तर ऊँचा होता गया, वैसे-वैसे

राजा के स्थान पर चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा राज्य चलाया जाय, ऐसी मान्यता बनी और आज, जब कि मानव का अधिक ही विकास हो रहा है, वह यह भी सोचने लगा है कि राज्य के बिना ही सुव्यवस्थित समाज चल सकता है और बहु-सख्यक विचारक राज्यहीन समाज की कल्पना भी करने लगे हैं। अतएव गाधी या विनोबा जो कुछ कहते हैं, वह उनके व्यक्तिगत खयाली विचार नहीं हैं, बल्कि वे युग-परिस्थिति के उद्‌गार हैं।

जिस तरह ज्ञान, विज्ञान तथा संस्कृति के विकास के स्तर के आगे बढ़ने के साथ-साथ मनुष्य की राजनैतिक मान्यता आगे बढ़ती गयी, उसी तरह मनुष्य की मामाजिक मान्यता मे भी परिवर्तन होता गया। पुराने जमाने में मनुष्य यह मानता था कि लोग आत्मरक्षा के लिए निरन्तर ही एक-दूसरे के साथ सघर्ष मे लगे रहते है और उसमें से जो सबसे अधिक क्षमता रखते है, वे ही जिन्दा रहते हैं। यह विचार अंग्रेजी मे "Struggle for existence & survival of the fittest" के नाम से मशहूर है। अर्थात् समाज मे "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली मान्यता चालू थी। उस समय मानव का स्तर इतना नीचा था कि वह वैयक्तिक दायरे के बाहर सोच ही नहीं सकता था। और चूँकि व्यक्तिवादी विचार सर्वव्यापो था, इसलिए एक ही व्यक्ति सब पर राज्य करता था। कोई सर्वाधिक क्षमतावान् व्यक्ति किसी इलाके में बाकी सबको दबाकर, राजा बनकर वश-परम्परा से राज्य चलाता था। बाद को जब मनुष्यों का सास्कृतिक तथा नैतिक स्तर ऊँचा उठा, तो उनमें "बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय" का विचार प्रसिद्ध हुआ और तदनुसार बहुमत के राज्य में बहुमत से निर्णय आदि का विचार चला। धीरे-धीरे मानव का ज्ञान-विज्ञान आदि का स्तर और ऊँचा उठता गया और आज मानव इस स्थिति पर पहुँच रहा है कि आज के विचारक "सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय" की बात सोचने मं सफल हो रहे हैं और उसके अनुसार ही सर्वसम्मति के विचार सामने आ रहे है।

यह युगवाणी ही है

अर्थात्, "व्यक्तिगत सामर्थ्यवादी" युग में व्यक्तिगत व्यवस्था तथा निर्णय का विचार चलता था, फिर "बहुजनहितायवादी" युग मे बहुमत के निर्णय की

पद्धति चलने लगी और आज "सर्वजनहितायवादी" युग मे, सर्वसम्मति की व्यवस्था चलने की आवश्यकता हो गयी है। दूसरी व्यवस्था इस "सर्वजनवादी" युग मे सम्भव नहीं है।

व्यक्तिवादी युग से प्रगति कर समाजवादी युग मे पहुँचने के कारण मनुष्य का मानसिक परिवर्तन भी हो रहा है। व्यक्तिवादी युग की सग्रह-वृत्ति के कारण व्यापक क्षेत्र मे मनुष्य के हितों मे परस्पर-विरोध स्वाभाविक था और हितभेद के कारण मतभेद भी अनिवा ही था। आज हम जब समाजवाद का विचार करते है, और सपत्ति के समाजीकरण की बुनियाद डालने की बात करते हैं, तो स्वतः ही हित-सघर्ष या हित-भेद के निराकरण की ओर बढ रहे हैं। जैसे जैसे हित-भेद का निराकरण होता जायगा, वैसे-वैसे मतभेद का दायरा भी घटता जायगा। फिर सामूहिक हित के चिन्तन करने के सिलसिले मे मनुष्य को "सहमति" के सिद्धान्त का अमल सहज रूप से ही करना होगा।

अतएव सर्वसम्मति का विचार इस युग की ऐतिहासिक आवश्यकता है। यह कुछ विनोबा के स्वप्न की कल्पना नहीं है। व्यावहारिक वह चीज होती है, जो जमाने की परिस्थिति तथा विचार के साथ चलती है। उसके आगेवाली चीज जिस तरह से अव्यावहारिक है, उसी तरह गुजरे हुए जमाने की चीज भी अव्यावहारिक होती है। साधारण मनुष्य इसे समझ नहीं पाते, इसलिए वे सकट मे पड़ जाते हैं। फलस्वरूप मनुष्य को वस्तुस्थिति से परिचित कराने के लिए युगपुरुष की आवश्यकता हो जाती है।

भूदान-यज्ञ (साप्ताहिक) से
१४-१२-'५६

: २८ :

चुनाव-प्रस्ताव-संबंधी प्रश्नोत्तर

प्रश्न :—जो प्रचलित लोकशाही का रूप है और चुनाव का जो मौजूदा तरीका है उसीमें खराबी है, इसलिए आपने यह प्रस्ताव किया है ? सिर्फ कांग्रेस या किसी खास पक्ष अथवा व्यक्ति पर तो कोई आक्षेप करने का इरादा इसमे नहीं है ?

दादा :—जी नहीं। यह तो आज के लोकतंत्र और चुनाव-पद्धति को लेकर निश्चय हुआ है।

प्रश्न :—चुनाव के बाद कोई भी पार्टी सत्तारूढ हो, तो उसको इस नीति से फायदा कैसे मिलेगा ?

दादा :—मौजूदा लोकतंत्र की पद्धति मे ?

प्रश्न :—मौजूदा लोकतंत्र की पद्धति मे ही चुनाव होंगे। यह तो वस्तुस्थिति है। ऐसी हालत मे जो पक्ष सत्ताधारी होगा, उसे सत्ता का सदुपयोग करने मे सर्व-सेवा-संघ के इस प्रस्ताव से कैसे सहायता मिलेगी ?

दादा :—सवाल यह पूछा गया है कि इस प्रस्ताव की जो नीति है, उस नीति से जो आज सत्ताधारी पक्ष है या आगे जो सत्ताधारी पक्ष बनेगा, उस पक्ष को कैसे सहायता मिलेगी, कैसे लाभ मिलेगा। सहायता और लाभ से यह मतलब नहीं कि अपनी सत्ता रखने मे कैसे सहायता मिलेगी, यह वे नहीं पूछ रहे हैं। पूछ यह रहे हैं कि जन-कल्याण करने के लिए, लोक-कल्याण करने के लिए या लोकतंत्र को आज से अधिक कार्य-क्षम बनाने के लिए किस तरह इससे मदद मिलेगी। दुनिया की राजनीतिक स्थिति का विश्लेषण करने पर स्पष्ट लगता है कि अब लोकतंत्र मे दो पक्षो की सत्ता की स्पर्धा नहीं रहनी चाहिए। आज तो केवल पक्ष-निष्ठ लोकतंत्र हो गया है। आज के लोकतंत्र मे हमारे देश मे यह स्थिति पैदा हो गयी है कि केवल एक सत्ताधारी पक्ष का ही अस्तित्व है।

दूसरे पक्षों की सत्ता नाममात्र की है। और हम यह भी देखते हैं कि उस पक्ष के और दूसरे पक्षों के कार्यक्रमों में और साधनों में कोई खास अंतर नहीं रह गया है। तब आज हम लोकनीति की दिशा में कैसे बढ़ें, इस संबंध मे कई सुझाव हो सकते हैं। मामूली चर्चा में कई सुझाव दिये गये हैं। विनोबाजी ने एक सुझाव दिया था कि अगर एक ही पक्ष प्रभावशाली है और उसकी इतनी बड़ी सत्ता है, इतनी बड़ी संख्या है, इतना बहुमत है कि दूसरे पक्षों से उसका कोई मुकाबला नहीं है, तो पहला कदम वह यह रखे कि पार्टी में से 'विप' को उड़ा दे। क्योंकि साधारण रूप से तो पक्ष के सदस्यों की राय एक है ही। ऐसे बहुत कम मौके हो सकते हैं कि जिन मौकों पर आपस में मतभेद हो। पक्ष-निष्ठा से लोक-निष्ठा की तरफ जाने के लिए दूसरा कदम यह हो सकता है कि एक करेक्टिव एलिमेंट (सत्ता की संशोधक शक्ति) होनी चाहिए। पार्लमेंट मे ऐसा पक्ष न हो, जो आज के सत्ताधारी पक्ष की जगह लेने की चाह रखे। लेकिन ऐसे कुछ व्यक्ति हों, जो किसी भी पक्ष के नहीं होंगे, जितने पक्ष पार्लमेंट मे है, उन पक्षों मे से किसी पक्ष का बंधन उन व्यक्तियों पर नहीं होगा। वे व्यक्ति ऐसे होंगे, जिनका चुनाव म किसी पक्ष ने विरोध नहीं किया है। सब पक्षों के अविरोध से वहाँ पहुँच गये हैं। लोकहित की जो बात होती है, उसे वे पक्ष के बंधन का विचार न करते हुए स्पष्ट रूप से खुलकर कह देते हैं। इस तरह के कई कदम सुझाये जा सकते हैं।

यह जो तटस्थता की नीति है, यह तटस्थता की नीति केवल अभावात्मक, जिसे निषेधात्मक कहते हैं, वैसी नहीं है। जो आज सत्ताधारी है या आगे होगा, उस पक्ष के लोग इससे लाभ उठा सकते हैं। इस सत्ता से अलिप्त जो रचनात्मक कार्यकर्ता रह जाते है याने आज की चुनाव की राजनीति से अलिप्त सभी पक्ष अगर चाहें तो उनकी सलाह से फायदा उठा सकते हैं। अपनी चुनाव की नीति में सभी पक्षों को परिवर्तन करना चाहिए। जहाँ दूसरे पक्षों के ऐसे उम्मीदवार खड़े हैं कि जो उम्मीदवार लोक-कल्याण बहुत अधिक कर सकते हैं, तो केवल पक्ष-भेद की बुनियाद पर उनका विरोध करने के बदले, हरएक पक्ष ऐसी जगहें दूसरे पक्ष के लिए खाली छोड़ दे। वहाँ अपना उम्मीदवार खड़ा न करें।

इस तरह जो उम्मीदवार चुने जायँगे, वे किसीकी मेहरबानी से नहीं, उनकी उदारता से नहीं, बल्कि इसलिए कि सारे पक्ष यह समझते है कि इस तरह के कुछ लोगों का ससद में या विधान-सभा मे रहना जरूरी है। इस तरह कई कदम एक के बाद एक हो सकते है।

लेकिन इसके लिए हमने इस बात की जरूरत समझी कि सत्ता की स्पर्धा से जो अलिप्त सत्ताकांक्षी नहीं है, जो जागरूक हैं, सावधान हैं और लोक-कल्याण को समझते हैं, ऐसे कुछ कार्यकर्ता देश मे रहे। वे लोक-शक्ति के विकास मे ही निरन्तर लगे रहें। तो केवल सत्ताधारी पक्ष को ही नहीं, सत्ताकांक्षी पक्ष को भी और जो-जो पक्ष जिस-जिस समय पर सत्ताधारी बनता जायगा, उन सब पक्षों को उनसे बल मिलेगा। बापू की जो लोक-सेवक-सघ की कल्पना थी, वह कुछ इसी आधार पर थी। बापू की लोक-सेवक-सघ की कल्पना का कुछ-कुछ आभास इस प्रस्ताव में है।

प्रश्न :—पहले इस सम्बन्ध में जो चर्चाएँ हुईं, उनमे यह कल्पना दी थी कि रचनात्मक कार्यकर्ताओं का, जो पक्षातीत है, उनका एक नैतिक असर चुनाव में पड़ेगा और नैतिक असर इस तरह से पड़ेगा कि जिस उम्मीदवार को वे ठीक समझते हों कि यह अहिंसा में विश्वास रखता है, उसका वे समर्थन करेंगे। इस तरह लोक-नीति की दृष्टि से एक नैतिक असर उनका पड़ेगा। अगर सिर्फ तटस्थ रहें, तो वह असर नहीं पडेगा। इस प्रस्ताव मे आपने दो बातें कहीं हैं कि वे उन्हें वोट न दें, जो हिंसा मे विश्वास रखते हैं या जो साम्प्रदायिक हैं। दो बातें तो साफ कही हैं। तो इसके बाद आप यह समझते हैं कि इससे लोगों को मार्गदर्शन मिल जायगा? ठीक-ठीक असर पड़ेगा? कोई प्रत्यक्ष (पॉजिटिव) असर पड़ेगा? ठीक लोग चुने जायँगे, चाहे किसी पक्ष के हों? जो हिंसा को मानते हैं या जो साम्प्रदायिक है, उनके अलावा भी दूसरे उम्मीदवारों के चुनाव में सर्व-सेवा-सघ का या रचनात्मक कार्यकर्ताओं का प्रत्यक्ष नैतिक असर पड़े, ऐसी कोई योजना आपकी है या नहीं?

दादा :—जी नहीं। इसमे सर्व-सेवा-संघ की जो आज मर्यादा है, वह मर्यादा भग होती है। वह निष्पक्ष रूप से ही क्यों न हो, एक तरह से चुनाव

में प्रत्यक्ष भाग लेना ही होगा। फिर तो जहाँ जहाँ पर जो उम्मीदवार खड़े होंगे, उनमें से हरएक के बारे में वहाँ के रचनात्मक कार्यकर्ताओं को अपनी राय देनी होगी। वे उम्मीदवार कभी इस पार्टी के होंगे, कभी उस पार्टी के होंगे, कभी किसी पार्टी के नहीं होंगे। इस तरह से चुनावों में एक तीसरी शक्ति दाखिल हो जाती है, जो आखिर अप्रत्यक्ष रूप से ही क्यों न हो, सत्ता की स्पर्धा में शामिल हो जाती है। यह चीज आज सर्व सेवा-संघ की मर्यादा में नहीं आती।

प्रश्न —पिछले चुनाव के वक्त आपका प्रस्ताव था कि अच्छे आदमियों को वोट दो। यही था न? तो उसमें अब फर्क हो गया न?

दादा —जी हाँ, पिछला जो प्रस्ताव था, वह तो उस वक्त के लिए था। गयी बात जाने दीजिये। अच्छे आदमियों को वोट देने का मतलब बहुत ज्यादा नहीं होता है। मै आपको एक उदाहरण दूँ। मेरी माँ है। मैं उसको हर तरह से पूज्य मानता हूँ। चरण छूता हूँ। लेकिन कल वह उम्मीदवार हो जाय, और कहे कि मै किसी हरिजन को मन्दिर में नहीं जाने दूँगी, तो क्या अच्छा 'आदमी' हुई वह। अच्छे और बुरे की कोई इस तरह की पहचान नहीं हो सकती। इसीलिए तो लोगों ने पार्टियाँ कायम कीं। तंग आकर इन लोगों ने एक मोटी सी मर्यादा बना ली और पार्टियाँ बन गयीं। अमुक कार्यक्रम में जो विश्वास करता हो, वह अच्छा है, जो नहीं करता, वह बुरा है। इस तरह पार्टियों में उम्मीदवार बँट गये और लोगों को भी बाँटने लगे। लेकिन अब हम ऐसे मुकाम पर पहुँचे हैं कि पार्टियाँ लोक हित और लोक-सत्ता की तरक्की में रुकावट करती हैं। इसलिए अब अनुभव के बाद इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि हमारे कार्यकर्ताओं को सत्ता की स्पर्धा से ही बचना चाहिए।

प्रश्न —मेरा एक सुझाव है। सर्वोदय-योजना की चर्चा जब आप करेंगे, उस वक्त इस प्रश्न का भी विचार अवश्य करें। आज जो पार्लमेंटरी डेमोक्रेसी (संसदीय लोकतन्त्र) है, वह हिंदुस्तान के लिए कोई बहुत उपयोगी नहीं है। पार्टी सिस्टम (पक्ष पद्धति) हो, तो और भी गलत है। चुनाव की जो पद्धति है, वह भी हम गलत मानते हैं। लेकिन ठीक दिशा की तरफ देश को कैसे जाना चाहिए? हम लोग हैं और पक्षों में जो लोग हैं, उनमें से कई लोग समझना चाहते हैं कि

किस तरह से चुनाव करें ? डायरेक्ट, इनडायरेक्ट, एलेक्शन (प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष चुनाव) का भी सवाल आता है। तो इस बारे में स्पष्ट कल्पना सर्व-सेवा-संघ की क्या है, उसका स्पष्ट चित्र सामने आना चाहिए। जवाहरलालजी भी यह समझते हैं कि आज की चुनाव की पद्धति बिलकुल गलत है। वे कहते हैं कि इस वक्त तो बदलना बड़ा मुश्किल है, चुनाव के बाद बदलेंगे। लेकिन वह किस तरह बदलेगी, यह न हमारे सामने है, न आपके सामने है और न देश के सामने है। सर्व-सेवा-संघ के सामने क्या है, यह स्पष्ट होना चाहिए। तब लोगों में हम कह सकेंगे। पार्टियाँ भी अपने में फर्क कर सकेंगी और दुनिया को भी हम एक नया रास्ता बता सकेंगे।

धीरेन्द्र भाई :—सर्वोदय-योजना जो बनेगी, उसमें लोकतंत्र का रूप क्या होगा, यह प्रश्न पूछा गया है। उसमें चुनाव होना चाहिए क्या ? आज के लोकतन्त्र की भूमिका यह है कि जन-कल्याण या समाज-हित के काम राज्य द्वारा ही हों। इससे एक राज्यनिष्ठ वृत्ति पैदा होती है। अतएव हमें आज की जो चुनाव-पद्धति है और लोकतन्त्र का जो रवैया है, वह ठीक नहीं लगता। उसमें आमूल सुधार होना चाहिए। क्या सुधार होना चाहिए, इसका विचार और चर्चा एक जरूरी चीज है। लेकिन हमारी नीति यही होगी कि जब तक यह दूषित तरीका है और हमको अगर उसकी जगह दूसरा बेहतर तरीका आज ठीक-ठीक मालूम नहीं है, तो उसकी खोज के लिए हमें इसमें से निकलना है। तब तक के लिए भी हम इस दूषित तरीके में भाग नहीं लेते हैं। यह एक विचार है। दूसरा विचार यह है कि हमारा लक्ष्य क्या है ? यहाँ साध्य और साधन की बात है। सर्व-सेवा-संघ ने अपना स्पष्ट लक्ष्य यह बताया है, दो-तीन साल से, कि हमें शासन-मुक्त और शोषण-मुक्त समाज कायम करना है। अर्थात् अहिंसक समाज की रचना के लिए राज्य-संस्था का विघटन होना चाहिए। अब योजना-पूर्वक, संयोजित तरीके से हमें विघटन करने की प्रक्रिया भी उपस्थित करनी है। तो, जो लोग इस विचार के हैं और राज्य-संस्था के विघटन के काम में लगे हैं, वे ही विचारक और वे ही संस्थाएँ राज्य-निर्माण के काम में भाग लेंगे, यह असंगत है। यह एक वैचारिक भूमिका है। एक चीज यह है कि हम राज्य-संस्था द्वारा जन कल्याण

करने का जो एक विचार है, वेलफेयर स्टेट का जो विचार है, दुनिया मे उसको मान्य रखते हुए भी चुनाव में भाग नहीं लेंगे। चुनाव की आज की पद्धति है, उस पद्धति के कारण दूसरा विचार यह है कि हमें स्वतंत्र जनशक्ति द्वारा समाज की व्यवस्था और उन्नति करनी है और अततोगत्वा हमें योजना पूर्वक राज्य का विघटन करना है, यह हमारा कार्यक्रम है। तो ऐसी विघटनकारी जो जमात होगी, वह राज्य-निर्माण किस तरह से हो, कौन जाय राज्य-निर्माण के काम मे, इस प्रयत्न मे भाग ले, यह असगत लगता है। सर्व-सेवा-सघ की राज्य के बारे में जो मान्यता है, शासन के बारे में जो मान्यता है, उसको और उसके लक्ष्य को सामने रखते हुए उसका साधन क्या होगा, उस स्थिति तक पहुँचने के लिए हम कौन-सी शक्ति की मार्फत काम करेंगे? इस दृष्टि से यह आवश्यक माना गया है कि हम राज्य-निर्माण के काम में दिलचस्पी न लेकर स्वतंत्र जनशक्ति के निर्माण में ही अपनी सारी शक्ति लगायें। यह जनशक्ति ही तो आगे चलकर राजशक्ति की जगह लेगी। तो, यह एक भूमिका भी उस प्रस्ताव के पीछे है।

दादा :—धीरेनदा ने जो बातें कही हैं, वे बिलकुल बुनियादी और मौलिक हैं। लेकिन मैंने तो जिस मर्यादा में प्रश्न पूछे गये हैं, उसी मर्यादा में अपनी बात रखी है। हमारी चर्चा का दायरा, 'यूनिवर्स ऑव डिसकोर्स' जितना था, उसकी मर्यादा में मैंने अपनी बात रखी थी। पार्लमेंट मे दो पक्ष होते हैं—एक हुकूमत में होता है और दूसरा हुकूमत की ताक मे होता है। याने वह उसके लिए हमेशा तैयार रहता है और सिर्फ तैयार ही नहीं, इसके लिए उत्सुक भी रहता है कि आज जिस पक्ष के हाथ में हुकूमत है, उस पक्ष की कब हार हो, कब हमारी जीत हो और उस पक्ष के हाथ मे जो हुकूमत है, वह हमारे हाथ मे आ जाय। तो, यह जो हुकूमत का उम्मीदवार पक्ष होता है, वह पक्ष, आज हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि जिस तरह की समाज-रचना का और जिस तरह के लोकतन्त्र का हम विचार करते हैं, उसमें नहीं हो सकता और न होना ही चाहिए। इसलिए मैंने बीच की बात आपसे कही कि कुछ लोग ऐसे हो सकते हैं कि जो सशोधक तत्त्व का काम करें। याने गलती और दोष बतलानेवाले ही नहीं, उपाय भी बतलानेवाले हों। सहयोग करनेवाले और वक्त पर गलतियाँ बतलानेवाले ऐसे

कुछ नैतिक प्रभाववान् लोग हो सकते है। लेकिन किसी एक पक्ष का यही काम हो कि वह गलतियाँ देखता रहे और इसलिए हमेशा उत्सुक रहे कि हमारे हाथ मे सत्ता कब आती है, अहिंसक लोकनीति में यह बात आ नहीं सकती। इसलिए मैंने कुमारप्पाजी के लेख का उल्लेख किया, जिसमे उन्होंने यह कहा है कि ये जो रचनात्मक कार्यकर्ता बाहर काम करते हैं; वे अपने काम से कुछ ऐसे नमूने पेश करें कि जिनके आधार पर उस वक्त की सरकार अपना सयोजन कर सके और काम कर सके। ये नमूने इनको पेश करने चाहिए। यह विरोधीपार्टी पार्टी नहीं होगी। यह एक ऐसी जमात होगी कार्यकर्ताओ की, जो समाज का कदम किस दिशा मे आगे बढना चाहिए, इसका कुछ चित्र समाज के सामने प्रत्यक्ष रूप से पेश करती रहेगी। कोई नमूना पेश करने की जो मॉग है, उसको मै बहुत जायज और वाजिब समझता हूँ। लेकिन आज वह मॉग अच्छी तरह से पूरी इसलिए नहीं हो सकती कि जितने प्रयोग और जितने नमूने पेश करने होंगे, वे आज के सदर्भ म पेश करने होंगे। आज के सदर्भ में उन नमूनों को नापने के लिए आप पैमाना आज का ही लगायेंगे। आपके जो नाप होंगे, बटखरे होंगे, वे आज के समाज के मूल्यों के अनुरूप होंगे। इन नये प्रयोगों की सफलता और असफलता को नापने का आपके पास जो पैमाना होगा, वह आज के समाज के मूल्यों का दिया हुआ पैमाना होगा। नया पैमाना, नये मूल्यो का पैमाना, आप उसके लिए लागू नहीं करेंगे। इसलिए आज के समाज की दृष्टि से तो जितने ही प्रयोग होंगे, वे या तो असफल प्रयोग माने जायेंगे या अल्प सफल प्रयोग माने जायेंगे। हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि ऐसी परिस्थिति मे समाज-रचना का आमूलाग्र परिवर्तन ही एकमात्र उपाय है। सिवा क्रांति के आज दूसरा कोई चारा नहीं है। संदर्भ बदलने के लिए क्रांति की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से जो लोग क्रान्ति के कार्य मे लगे हुए हैं, उनकी यह भूमिका होनी चाहिए कि वे किसी पक्ष का विरोध न करें, किसी पक्ष से असहयोग न करे, किसीका तिरस्कार भी न करें, अपने कार्य में लगे रहे, नमूने जितने पेश कर सकते हैं अण्णासाहब कोरापुट मे करें, अप्पासाहब दूसरी जगह करें, गांधीग्रामवाले तीसरी जगह करें। लेकिन आसपास की जनता और हम स्वय भी यही कहनेवाले

हैं कि हमने जो प्रयोग किये, वे पूरी तरह से सफल नहीं हो सकते। पूरी तरह से प्रयोग उसी अवस्था में सफल होंगे, जिस अवस्था में सामाजिक सदर्भ बदला हुआ होगा। उसको बदलने की तरफ मुख्य ध्यान हमारा होना चाहिए। इस दृष्टि से यह नीति अख्तियार की है।



खतरा बुरे राज्य से नहीं, अच्छे राज्य से!

दुर्जन राज्यकर्ताओं के खराब राज्य के कारण हमें उतना दुःख नहीं होता है, जितना सज्जन राज्यकर्ता के अच्छे राज्य से होता है! औरंगजेब जैसों की सत्ता से हमें उतनी चिंता नहीं है, न उसमें डरने की उतनी बात है। लेकिन अकबर जैसों के राज्य से डरने की बात जरूर है, क्योंकि वह अच्छा राजा था और इसलिए राज्य-सत्ता को ही स्टेटस (प्रतिष्ठा) मिलती थी! हम अच्छे राज्यकर्ताओं से इसलिए ज्यादा डरते हैं कि जहाँ अच्छे राज्य चलते हैं, वहाँ लोगों को शासन में से मुक्त होने की बात ही सूझती नहीं। लेकिन आज अगर अच्छा राज्य है, तो कल खराब राज्य भी तो आ सकता है। इसलिए जब तक सब लोग अपनी ताकत से, स्वावलंबन से इनसे मुक्ति नहीं पाते हैं, तब तक खतरा टलेगा नहीं।

(पेरय्युर, मदुरा, २४-१२) —विनोबा

सन् १९५७ के लिए सर्वोदय-स्वाध्याय-योजना

सन् '५७ के लिए सर्वोदय-स्वाध्याय-योजना नये रूप में शुरू की जा रही है।

सन् '५५ और '५६ की सर्वोदय-स्वाध्याय-योजनाओं में रही हुई कमियों से बचने के लिए यह योजना बनायी जा रही है, जिसकी रूपरेखा इस प्रकार है :

१. यह योजना १ जनवरी '५७ से आरम्भ हो रही है। योजना-सदस्यता-शुल्क १०) है। एक संस्था एक से अधिक संख्या में सदस्यता-शुल्क जमा करा सकती है। सदस्यता-शुल्क का रुपया स्थानीय प्रमाणित खादी और साहित्य-भण्डारों में ही जमा करना चाहिए। वहीं से साहित्य भी लेना होगा। राजघाट, काशी को शुल्क न भेजा जाय।

२. सदस्यों को तीन-चौथाई मूल्य में साहित्य मिलेगा। १०) में कुल मिलाकर १३।-) का साहित्य प्राप्त होगा, जो लगभग तीन हजार पृष्ठों का होगा। सदस्यों को किताब देने पर भण्डार अपने पासवाली रसीद पर सदस्यों के हस्ताक्षर लेता रहेगा, ताकि सदस्यों को पुस्तकें ठीक से मिलती रहें।

३. इस योजना में सेट नं० १ और नं० २ से भिन्न, सर्व-सेवा-संघ से प्रकाशित नयी पुस्तकें रहेंगी। पुस्तकें जैसे-जैसे प्रकाशित होती रहेंगी, सम्बन्धित भंडारों से उपलब्ध हो सकेंगी। १॥) मूल्य तक की हर पुस्तक योजना में दी जायगी। १॥) से ऊपर के मूल्य की पुस्तक योजना के अन्तर्गत नहीं रहेगी। टेक्निकल, शास्त्रीय तथा हिन्दी के अलावा अन्य भाषाओं की पुस्तकें भी शामिल नहीं रहेंगी।

४. प्रमाणित साहित्य-भंडारों के पास सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन की ओर से एक तिपानी रसीद-बुक रहेगी और उनके पास सदस्य बनाने का अधिकृत प्रमाण-पत्र रहेगा। शुल्क जमा करने पर रसीद की एक प्रति सदस्य को दी जायगी और एक प्रति प्रकाशन दफ्तर, काशी में पहुँचती रहेगी। वह रसीद ही सदस्यता-फार्म समझा जायगा। अलग से कोई फार्म नहीं रहेगा।

५. २० या अधिक सदस्य एक साथ बनना चाहेंगे, तो उन्हें काशी से सदस्य बनाया जा सकेगा। उनका शुल्क एक साथ काशी आना चाहिए। उन्हें एक साथ ही साहित्य किसी भी रेलवे-स्टेशन पहुँच दिया जा सकेगा। फुटकर सदस्य काशी से नहीं बनाये जायँगे।

—संचालक